तीसरा अध्याय

मार्कण्डेय के कथासाहित्य में राजनीति एवं अर्थ

तीसरा अध्याय
मार्कण्डेय के कथासाहित्य में राजनीति एवं अर्थ

राजनीति समाज के उन तमाम शक्तियों, संस्थाओं तथा संगठनात्मक व्यवस्था से सम्बन्धित होती है, जो राज्य के शासन कार्यों को संगठित करती है। दूसरे शब्दों में "व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा संघर्ष या सहयोग के माध्यम से सत्ता के इस्तेमाल के लिए प्रयत्नशील गत्यात्मक गतिविधि ही राजनीति है।"[1] राजनीति का फैलाव समाज का हर हिस्से में होता है। किसी भी समाज और राष्ट्र के विकास के लिए राजनीति का सहारा लेना ज़रूरी होता है।

3.1 स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश एवं मार्कण्डेय के राजनीतिक विचारधारा

भारत का इतिहास गवाह है कि वैदिक समाज से लेकर स्वतंत्रता पूर्व तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था कबीलों, राजाओं, सामन्तों, नवाबों और अंग्रेज़ी शासनाध्यक्षों के हाथों से निर्धारित होता रहा है। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। 26 जनवरी 1950 को भारत गणतंत्र राष्ट्र घोषित किए गए। पर विडंबना की बात है कि स्वतंत्रता और गणतंत्र की घोषणा के बाद जो राजनीतिक परिवेश उभर कर आया है, वह राजनीतिज्ञों की उद्घोषणाओं और अवाम की

---

1. डॉ. जितेन्द्र वत्स - साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना - पृ. 16

संभावनाओं के खिलाफ है। "वे नेता जो देश की करोडों जनता के साथ जुड़कर स्वतंत्रता का सपना देख रहे थे, एकाएक गायब हो गए और उनके स्थान पर एक ऐसा नेतावर्ग शक्तिशाली होकर उभरा है जो हर सुख, सुविधा, प्रगति को व्यक्तिगत धरातल पर देखता है। जिसकी दृष्टि में देश का विकास गौण है, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक विकास सर्वोपरि है।"[1]

राजनीतिक क्षेत्रों में फैले भ्रष्टाचार और अनास्था के कारण जनता के मन में राजनीतिज्ञों के प्रति अविश्वास तथा घृणा प्रकट होने लगे। इस दौरान भारत में अनेक राजनीतिक दलों का उदय हुआ। "स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक दिनों भारत में केवल एक ही राजनीतिक दल थी कांग्रेस। लेकिन बाद में हम देख सकते हैं कि कांग्रेस के अन्तर्गत भी सत्ता के लिए संघर्ष पैदा होने लगा। परिणाम यह निकला कि भारत में समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ तथा अन्य अनेक स्वतन्त्र पार्टियों का जन्म हुआ।"[2] अवाम ने समझ लिया है कि सरकार जो भी हो, उसे जनता की हित चिन्ता से कोई सरोकार नहीं है। सब अपने स्वार्थ को पूर्ति करने में लीन है।

स्वातंत्र्योत्तर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के तहत गावों में पंचायतों को स्थापित किया गया। "पंचायती राज का लक्ष्य सत्ता का विकेन्द्रीकरण है, जिससे गाँव का प्रत्येक व्यक्ति सत्ता का साझेदार बन सके, उसके रीति-नीति में, उसकी

---

1. मंजुलासिंह - हिन्दी कहानी में युगबोध - पृ. 173
2. डॉ. एम.के. अजिमाकुमारी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में सामाजिक चेतना - पृ. 123

विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में जागरूकता के साथ भाग ले सके। सरकारी स्तर पर पंचायती राज का उद्देश्य प्रजातंत्र के कार्य में करोडों व्यक्तियों को लेकर प्रजातंत्र को वास्तविक बनाना है।"[1] पंचायत की स्थापना के दौरान गाँवों में हुई नव परिवर्तित स्थितियाँ वहाँ के राजनीतिक माहौल को प्रभावित किया। गाँववाले आशा में थे कि अपने सरकार आने से उसकी जीवन व्यवस्था में बदलाव आ जाएँगे। लेकिन नेताओं की स्वार्थ प्रवृत्तियों ने राजनीति को घेर लिया। राजनीति कि विसंगति और विद्रूपता ने समाज को कई स्तरों पर तोड़ा। जनमानस में कुठायें एवं संत्रास पैदा किया।

अपनी परिवेश से गहराई में जुडे रहनेवाले किसी भी रचनाकार के लिए साहित्य को राजनीति से दूर रखना नामुमकिन होता है। राजनीति से दूर रहकर साहित्य सृजन करना कोरी बकवास है। दरअसल यह राजनीतिक सच्चाई पर पर्दा डालने की साजिश है। प्रतिबद्ध रचनाकार होने के नाते मार्कण्डेय राजनीतिक गतिविधियों से सजग थे। रवीन्द्र कालिया लिखते हैं - "मार्कण्डेय मूलतः एक राजनीतिक व्यक्ति हैं। राजनीति हो या साहित्य की राजनीति, विश्वविद्यालय की राजनीति हो या नगर महापालिका की राजनीति मार्कण्डेय के यहाँ विभिन्न इलाकों

---

1. "Panchayati Raj aims at making democracy real by bringing the millions into the functioning of democracy. It is a system of grass roots democracy which seeks to link the individual family in the remotest village with the Central Government"
   -Panchayati Raj in action : E.A. Narayana - P. 1

के लोग सलाह मशविरे के लिए आते रहते हैं।"[1] उनकी राजनीतिक चेतना मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है।

मार्कण्डेय के कथा साहित्य में आजाद भारत का पूर्वांचलिक राजनीतिक परिवेश को अपनी सभी दुर्बलताओं के साथ उकेरा गया है। गाँव के राजनीतिक जीवन के हर स्पंदन की उन्हें अच्छी पहचान है। "मार्कण्डेय की राजनीतिक विचारधारा ने यद्यपि कुछ गाँधीवादी पक्षों को अवश्य आत्मसात् किया है परंतु उन्होंने उसे अपनी रचनाशीलता का मूल आधार नहीं बनाया है। उन्होंने गाँधीवाद के कतिपय उन्हीं पक्षों को ग्रहण किया है जिनसे उनकी प्रतिबद्ध विचारधारा यानी मार्क्सवादी विचारधारा पर आघात न हो।"[2] अत्याचार और शोषण का विरोध गाँधीवाद और मार्क्सवाद दोनों ने किया है। ये विरोध मार्कण्डेय की रचनाशीलता में दिखाई देता है।

मार्कण्डेय के मुताबिक "कोई पार्टी तब तक जनता का विश्वास प्राप्त नहीं कर सकती, जब तक उसमें स्वतंत्र निर्णय लेने और उस पर दृढ़तापूर्वक कार्य करने की क्षमता न हो।"[3] मार्कण्डेय के अनुसार जनता को राजनीतिक गतिविधियों से सजग रहना ज़रूरी है - "किसी पार्टी की नीति क्या है, वह देश की भूखी नंगी जनता की समस्याऐं कैसे हल करना चाहती है, शोषण और अन्याय खत्म करने के बारे में उसके क्या कार्यक्रम हैं, यह देखना चाहिए है।"[4] उनकी दृष्टि में वर्तमान

---

1. संपा. प्रकाश त्रिपाठी - मार्कण्डेय : परम्परा और विकास - पृ. 54
2. डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद - मार्कण्डेय का रचना संसार - पृ. 16
3. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 202
4. वही - पृ. 166

राजनीतिक पार्टियाँ जनता की बुनियादी ज़रूरतों के लिए उतनी संघर्षशील नही है, जितनी सत्ता के लिए है।

दरअसल मार्कण्डेय कम्यूनिस्ट पार्टी को ही एक ऐसी पार्टी मानते हैं जो सही अर्थों में समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्षरत है। अन्य पार्टीयों के समाजवाद के नारे को दिखावा मानते हैं। उनके अनुसार "यह जो समाजवादी शब्दावली सुनाई पड़ती है, बढ़ते हुए विरोध को समाहित करने और भ्रम में डालने का उपाय मात्र है।"[1]

मार्क्सवादी होने के नाते मार्कण्डेय कांग्रेस पार्टी की कटु आलोचक रहे हैं। 'नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना' नामक कथनी का बुचऊ के कथन के ज़रिए मार्कण्डेय ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि महात्मा गाँधी की दुहाई देनेवाली कांग्रस पार्टी की कथनी और करनी में अन्तर है। बुचुऊ कहते हैं कि - "राजनेता तो गन्हीं महात्मा के साथ चले गए बच्चन, विचार नहीं रहा अब, बिना विचार के नेति कहाँ? ...अब काम धंधा सब में बेबिचारी आ गई। ...नेता लोगों को देखो... जिस कुरसी पर बैठ गए - बस वह उनकी हो गई। अब तो कुरसी की नेति है। गन्ही महात्मा का कुल काम-धाम धरा रह गया।"[2] गाँधीवाद को मार्कण्डेय व्यापक सामाजिक विचारधारा नहीं मानते। 'अग्निबीज' उपन्यास का सुमंगल के जरिए मार्कण्डेय गाँधीवाद की सीमाओं की ओर संकेत करते हैं - "गाँधी जी ने कोई

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 202
2. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 112

व्यापक सामाजिक दर्शन नहीं दिया चाची। वैयक्तिक परिष्कार की धारणा पूरे समाज के उत्थान में एक सशक्त इकाई तो बन सकती है पर वह सुस्थिर मानवता के लिए विकासशील चरण चिह्न नहीं छोड़ सकती।"[1]

देश की दूसरी पार्टियों की तुलना में कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रति उनकी खास सहानुभूति रही है। मार्कण्डेय की खूबी यह है कि अपनी विचारधारा के तहत साम्यवादी दल की वकालत करते समय उन्होंने पर्याप्त संयम का परिचय दिया है। उनकी वकालत प्रचारात्मकता के धरातल पर नहीं पहूँची है। वे पार्टी से ज़्यादा देश की जनता की क्रान्तिकारी चेतना के प्रति आस्थावान है।

3.2 ग्रामीण जीवन की राजनीतिक गतिविधियाँ

स्वाधीनता संग्राम के नेताओं तथा समाज सुधारकों से प्रेरणा ग्रहण कर ग्रामीणों में राजनीतिक चेतना के बीज अंकुरित हुए हैं। स्वातंत्र्योत्तर गाँवों में राजनीतिक चेतना की लहर पंचायती राज्य, वयस्क मताधिकार, संविधान के धर्म निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक स्वरूप, विकासयोजनाएँ आदि विभिन्न राजनीतिक कार्यों से संपन्न हुई है। ग्रामीणों में हुई राजनीतिक जागृति की ओर इशारा करते हुए डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल ने कहा है कि - "स्वतंत्रता के बाद अपने देश में समाजवादी समाज रचना से संबद्ध कार्यों का विस्तार गाँवों तथा अंचलों तक होने लगा, जिसके फलस्वरूप अंचल विशेष में राजनीतिक सामाजिक.... चेतना मुखरित

---

1. मार्कण्डेय - सेमल के फूल - पृ. 48

हुई।"[1] सदियों से प्रपीड़ित ग्रामीणों में उभर आयी राजनीतिक चेतना लोगों के बेहतर जिन्दगी की आस्था का नतीजा है। दरअसल ग्रामीण राजनीतिक नेताओं ने अवाम के सपनों को मिट्टी में मिला दिया है। राजनीतिक कूटनीतियों के तहत गाँवों का चेहरा भी बहुत कुछ बदल गया है।

3.2.1 सत्ता के केन्द्र में ज़मींदार

गाँव में सेठ-साहुकार एवं बडे जमींदारों का वर्चस्व पहले से ही चला आ रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में ये लोग अपना सामंतशाही रूप बदलकर जनता का प्रतिनिधित्व करने लगे हैं। गाँव में पंचायत का सरपंच वहाँ का ज़मींदार ही बनता है। अधिकार में प्रवेश कर वह आवाम का शोषण करता है। नतीजतन ग्रामीण जीवन पहले की तरह अविकसित बना रहता है। मार्कण्डेय की 'बातचीत' कहानी में पुराने ज़मींदार का राजनीतिक नेता बनने का जिर्क हुआ है। कहानी के रामू पंचायत के सरपंच बने गयादीन ठाकुर के संबन्ध में कहते हैं - "पंचाइत बनी थी किसानों के फायदे के लिए, लेकिन सरपंच हो ही गए गयादीन ठाकुर। खूब मुठ्ठी गरम होती है।"[2] पुराने ज़मींदार का राजनीतिज्ञ के रूप में तबदील होना ग्रामीण विकास के लिए बिलकुल फायदेमंद नहीं है।

सत्ता के केन्द्र में पूँजीपतियों का आगमन लोगों के मन में गहरा सदमा पहुँचा दिया। ग्रामीणों के मोहभंग का विश्वसनीय अभिव्यक्ति मार्कण्डेय के 'अग्निबीज'

---

1. डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल - आँचलिकता से आधुनिकता बोध - पृ. 129
2. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 206

उपन्यास में हुई है। ठाकुर ज्वालासिंह का राजनीतिक वर्चस्व का अंकन मार्कण्डेय ने यों किया है - "देश आजाद हो गया, लेकिन ज्वाला ने जो चाहा वही कर लिया। सुराजियों को पिटवाया। उनकी सभा तुडवायी, आश्रम का विरोध किया, हरिजनों को डाके में फंसाया और स्वतंत्र भारत के पहले ही चुनाव में जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि बनकर विधायक भी बन गया है। जिस जनता के मुँह पर वह थूकता था, उसी से उसने अपनी जय बुलवायी और यह सब हमें बाध्य होकर देखना और सहना पड़ा। आज वह सब सोचते सोचते भाइजी खण्ड खण्ड हो रहे थे।"[1] स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की सबसे बडी त्रासदी शोषक का शासक बन जाना है। अपने परंपरागत सामंती संस्कारों में रहते इन राजनीतिक नेता गाँव को कंकाल बनाए रखा है।

3.2.2 मानवीय संबन्धों में दरार

स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की विसंगति और विद्रूपता ने समाज को कई स्तरों पर तोड़ लिया है। लोगों के मन में कुंठायें एवं संत्रास पैदा किये हैं। स्वतंत्रता से पहले गाँव में लोगों के बीच आपसी प्रेम और एकता थी। लोग एक दूसरे के सुख-दुख में सहयोगी थे। लेकिन स्वतंत्रता के बाद गाँव में अपनी जड़ मज़बूत करनेवाली राजनीति ने गाँव के उस प्रेम और एकता को खंडित कर दिया है। राजनीतिक तंत्र ने संबन्धों में दरारें पैदा कर दिया है। मार्कण्डेय की 'नौ सौ रुपए और एक ऊँट दाना' नामक कहानी इस तथ्य को बखूबी से उकेरा है। कहानी का 'मैं' एक पढ़ा

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 15

लिखा और शहरी नौजवान है। उसका बचपन गाँव में बीता है। लंबे समय के बाद जब वह गाँव में आता है तो उन्हें संबन्धों में बदलाव नज़र आता है। वह दिल से तब टूट जाता है जब उसके काका-काकी उसे बुचऊ से मिलने के लिए मना कर देते हैं। वही बुचऊ जो आजादी से पूर्व गाँव भर में गाँधीजी के सिद्धान्तों का प्रचारक था। जाति भेद को तोडकर गाँववालों को समता के पाठ सिखाये थे। वह सबके सुख-दुख का साथी था। उस में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं हैं। अपनी कमाई के पैसों से कथावाचक के परिवार को खिलाया पिलाया था। कथावाचक विचार करता है कि "बाजार से चुपके से धोती माँगनी हो, तीज-त्यौहार का सामान लाना हो, उधार-बाढी पैसा माँगना हो : सबके लिए बुचऊ, यहाँ तक कि परिवार के बड़े-से बड़े मौके पर, वह काम आता है। परिवार की गोपनीय से गोपनीय बातें उसे मालूम रहतीं।"[1] 'मैं' यानी कथावाचक अंदर ही अंदर सोचता हैं - "मैं समझ नहीं पाता था कि क्या बात है, तो बुचऊ निगाह से इतना गिर गया, आखिर यही काकी तो घंटों उससे हंसी चिबोला करती रहती थीं।"[2] आखिर उन्हें बाद में इसके कारण का पता चलता है कि बुचऊ दूसरी पार्टी का है। आज़ादी के बाद गाँव में प्रविष्ट राजनीति ने संबन्धों को शिथिल बना दिया है। राजनीतिक तंत्र के सामने दूसरे के प्यार और समर्पण भी धोखा प्रतीत होती हैं। लोग एक दूसरे को शक की नज़र से देखते हैं। कथावाचक गाँव की हालत से चिंतित है - "आखिर गाँवों से यह अंधेरा कब जाएगा? अब तो हम, जैसे सब कुछ पाकर, स्वराज का सुख भोगने

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 209
2. वही - पृ. 209

लगे हैं। हमारे भीतर का आदमी कहाँ चला गया?"[1] यह मार्कण्डेय की ही चिंता है। मार्कण्डेय ने यहाँ पर राजनीतिक तंत्र से चूर-चूर होनेवाले मानवीय संबन्धों की जद्दोजहद अभिव्यक्ति दी है।

3.2.3 निराशा

स्वतंत्रता के बाद गाँववालों ने सुनहरे भविष्य की सपने बुने थे लेकिन स्वातंत्र्योत्तर युग गंदला होता गया। भारतीय भ्रष्ट राजनीति के कारण जनता का सपना टूटता गया। गोपाल राय के मुताबिक "ग्रामीण किसानों और खेतिहर मज़दूरों ने समझा था कि आज़ादी के बाद ज़मींदारों और भूमिपतियों का शोषण और अत्याचार समाप्त हो जाएगा, उन्हें भी खेती और आवास के लिए ज़मीन प्राप्त होगी, शिक्षा, जीविका के साधन और स्वास्थ सुविधाऐं मिलेंगी, सरकारी कर्मचारी उनकी सेवा के लिए होंगे, आज़ादी की लड़ाई में उनका नेतृत्व करनेवाले नेता देश के विकास कार्य में लाग जाएँगे। पर ऐसा नहीं हुआ। दशक बीतते-बीतते यह सपना टूटने लगा।"[2] एक ओर राजनेता सरकार की सभी योजनाओं को अपनाये जा रहे हैं तो दूसरी ओर देश का अवाम अभावमय जीवन से निराशाग्रस्त होता जा रहा है। मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' में ग्रामीणों के गहरे मोहभंग की अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यास का भाइजी हरहोनसिंह से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति की जिक्र करते हुई कहते हैं कि - "आकर ज़रा देखो गाँव को, सत्तर प्रतिशत लोग निरंतर

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 221
2. गोपालराय - हिन्दी उपन्यास का इतिहास - पृ. 401

भूख और नंगेपन में आज भी जीवन बिता रहे हैं। बच्चों को रात दिन में आधी रोटी मयस्सर नहीं है और वहीं बगल में बैठा मामूली-सा ज़मींदार तथा बड़ा किसान योजना का सारा रस पीकर मस्त हो गया है। जो स्वयं ले सकता है लेता है, बाकी के लिए अपने दलाल खड़े करता है और उसके नाम पर सब कुछ लेकर हर दिन मोटा होता जा रहा है। वही सरपंच है, वही मुखिया है, वही विकास समिति का अध्यक्ष है, वही जिलाबोर्ड का भी अध्यक्ष है और अब तो उसने ऐसी हालत पैदा कर ली है कि विधान सभा और लोक सभा में उसके अलावा विरला ही कोई पहुँच जाएगा।"[1] इस कथन से जाहिर होता है कि स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक गतिविधि से आवाम गहरे मोहभंग का शिकार बन गये हैं। पुराने ज़मींदार का राजनीतिज्ञ के रूप में प्रवेश करना तथा सत्तासीन होते ही निजी स्वार्थ में लीन होना जनता को हताशग्रस्त बना दिया है।

उपन्यास का बिसेसर मोहभंग का शिकार प्रतीत होता है। आंदोलन के दौरान देखे गए सपनों को आँखों के सामने टूटते देखकर बिसेसर हताशग्रस्त है - "बिसेसर के चेहरे पर उदासी धप् से कूद पड़ी। जीवन की वर्तमान गतिविधि का स्मरण मन पर बोझ की तरह सवार हो गया। वह बोला, कुछ नहीं बदला भइया, का-का सपना रहा, का बात रही, मृदा जो हुआ, वह ऐसा हुआ, जिसे सपनों में भी नहीं सोचा था। बिसेसर उदास मन से बोला - 'हमार सबकी तो किसी तरह कट

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 136

गयी, आगे जाने क्या होगा।"[1] उपन्यास में श्यामा के कथन भी लोगों की निराशा को ही उद्‌घाटित करता है। "स्वतंत्रता के आने की बात कब से सुनाई पड़ती है। लोग कहते हैं कि वह आ गयी है लेकिन यहाँ तो कहीं दिखाई नहीं पड़ी। आखिर वह गयी कहाँ? हो सकता है, कहीं बीच में ही अटक गयी हो, क्योंकि यहाँ तो सब कुछ वैसा ही है। गुलामी से भी बदतर। भुसई चाचा, बिन्दा भगत, छबिया, हिरनी, नन्हकी और ये सामने बैठे लोग, और भी न जाने कितने असंख्य ऐसे लोग जानते ही नहीं आजादी को। उन्हें उसकी कोई पहचान ही नहीं बनी। उन्हें बोलने, काम करने की आज़ादी की तो बात ही दूर रही, जीने की भी आज़ादी नहीं है।"[2]

मार्कण्डेय की 'नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना' कहानी इस तथ्य को उजागर करती है। कहानी का गाँधीवादी पात्र बुचऊ राजनैतिक विद्रूपताओं की ओर ईशारा करते हुए कहता है - "अब काम धंधा सब में बेबिचारी आ गयी। हमका छोड़ा, नेता लोगों को देका उनका भी वही हाल। जिस कुरसी पर बैठ गये बस वह उनकी हो गयी। अब तो कुरसी की नेति है। गन्ही महतमा का कुछ काम धरम धरा रहा गया।"[3] स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में अनैतिकता बढ़ गयी है। नतीजतन लोगों की आशा निराशा में तब्दील हो गई है।

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 132
2. वही - पृ. 108
3. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 112

3.2.4 जातिवाद

स्वाधीनता आंदोलन दौरान धीमे पडे जातिवाद ने स्वातंत्र्योत्तर युग में उग्र रूप धारण किया है। दरअसल यह भारतीय राजनीति की ऐतिहासिक सच्चाई है कि हर दल जातियता को बढ़ावा देता है। चुनाव जीतने के लिए जातियों पर आधारित नए-नए नीतियों का तंत्र चलाता है जिसकी वजह से लोगों के बीच की एकता टूट जाती है। मार्कण्डेय की पैनी निगाह इस बात से अवगत है। उनकी 'नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना' नामक कहानी इस तथ्य को उद्‌घाटित करती है। कहानी का बुचऊ कहता है - "क्या हो रहा है। धरम के नाम पर, जाति के नाम पर वोट उगाहते हैं। ठाकुर के ठाकुर, बाह्मन के बाह्मन, कहाँ गयी गरीबी? कहाँ गया छूवा-छूत...?"[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक दल जातिवाद को प्रोत्साहन देता है। इसके पीछे उनके निहित स्वार्थ होते हैं।

आज का अंचल कई जातिगत टोलों में विखण्डित है। गांवों में एकता के स्थान पर अनेकता है। दरअसल इसके पीछे राजनीतिज्ञों की जाति केन्द्रित कूटनीति है। स्वातंत्र्योत्तर प्रत्येक जाति के संगठन बन गये हैं। राजनीतिक नेता इन जाति के प्रतिनिधियों को अपने स्वार्थ की पूर्ती करने के लिए साथ ले लेते हैं। 'अग्निबीज' में इसका यथार्थ वर्णन मिलता है। ज्वाला सिंह की आतंक तथा कूटनीति के तहत चुनाव प्रचार में बाकर मुसलमानों में तथा मुसई हरिजनों में काम करता हैं। चुनाव में तो लोग ज्वालासिंह के लिए प्रचार करते हैं - "मुसई महतो और विन्द भगत के

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 112

साथ भाषण देनेवाला विरंजी कभी कभी दिन-दिन भर के लिए उन्हें जीप दे देता और उनसे कहता, बस तुम्हारे ही ओट से जीत होनी है, मुसई। इस बार तो बामन, ठाकुर, अहीर सब का ओट बँट गया है। बाकर भाई और तुम डटे रहो तो चुनाव निकल जाएगा।"[1] जातिवाद के अंधकार में फंसी अवाम अपने मताधिकार का सही उपयोग नहीं कर पाती है। जातिवाद राष्ट्रीय एकता में बाधा डालता घातक तत्व बनता जा रहा है।

मार्कण्डेय के कथासाहित्य में स्वातंत्र्योत्तर बदलते राजनीतिक गतिविधियों का जीता जागता चित्रण मिलता है। पुराने ज़मींदारों का राजनीतिक नेता बनना राजनीतिक अस्थिरता का कारण बन गया है। नतीजतन आवाम का सपना टूट गया। राजनीतिक तंत्र लोगों के बीच जातिगत दरार बनाकर आवाम को उनके साथ ले लेते हैं।

3.3 चुनाव की राजनीति

भारत में पहली बार 1952 में आम चुनाव हुआ था। इस काल तक आते-आते अनेक राजनीतिक दलों का आविर्भाव हो चुका है। दरअसल चुनाव ने ही भारत के ग्रामांचलों में राजनीति की जड़ मजबूत की है। चुनाव सरकार निर्माण का साधन है। शासन-प्रणाली में इसकी अहम भूमिका एवं उपादेयता होती है। चुनाव में जनता अपने मताधिकार के द्वारा अपने प्रतिनिधि को चुनती है। प्रजातंत्र

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 115

में सरकार प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा प्रजा के हितार्थ चलाई जाती है। पर आज चुनाव प्रणाली विभिन्न विसंगतियों का कारण बनकर रह गई है। राजनीति के क्षेत्र में सबसे बडी विकृति चुनाव से संबद्ध राजनीति तंत्र का होता है। "स्वाधीनता के बाद भारत के ग्राम जीवन को उन्नत करने के जो प्रयत्न हुए, राजनीति ने उसको तोड़ दिया है सबसे अधिक तोड़ा चुनाव ने चाहे वह लोक सभा, विधान सभा का चुनाव हो या ग्राम पंचायत का चुनाव हो। जहाँ-जहाँ प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रवेश हुआ वहाँ-वहाँ उसने विष-बीज बोया। फलस्वरूप राजनीति के दाँवपेंच ने गांव के जीवन में घुसकर उसे विषाक्त बना दिया है।"[1]

चुनाव के समय में उम्मीदवार बनने के लिए राजनीतिज्ञ कुछ भी करता है। 'अग्निबीज' उपन्यास का ठाकुर ज्वाला सिंह भी ऐसे ही स्वार्थ राजनीतिज्ञ है। चुनाव में वह कांग्रस का उम्मीदवार बनने के लिए अपने भाई साधु काका को मोहरा बना देता है। साधु काका स्वतंत्रता सेनानी है। ज्वाला उनके कमाई के फल को भोगना चाहता है। "ज्वाला सिंह ने दस हज़ार लोगों से दस्तखत कराकर लखनऊ वाले बडे कांग्रेसी नेता को बता दिया था कि साधो काका आधा पागल हैं और ज्वाला सिंह साधो काका की ही नहीं, यहाँ की गरीब जनता के सच्चे सेवक हैं। आश्रम भी उन्हीं ने खोला है। उन्होंने साधो काका के नाम से एक जाली चिट्ठी भी लखनऊ के नेताओं के पास भिजवा दी थी कि वे बयालिस में लगी सिर की चोट से कभी-कभी बेहोश हो जाते हैं। अब बस जनता की सेवा ही करना चाहते

---

1. नई धारा - दिसम्बर-जनवरी 1973 - पृ. 73

हैं। गवरमिन्टी काम उनके भाई ज्वाला सिंह को दिया जाय।"[1] ज्वाला सिंह के चुनावी तंत्र के नतीजतन भाईजी जैसे असली कार्यकर्ता कांग्रेस का उम्मीदवार नहीं बन पाते है। "भाई जी बेचारे दौडते रह गये। लेकिन उनकी किसी ने एक न सुनी। लखनऊ ओर दिल्ली के नेताओं ने कहा कि चरखा चलाने और चुनाव लड़ने में बडा फरक है। यह आज़ाद भारत का पहला चुनाव है, कोई मजाक नहीं। उन्हें कांग्रेस की नींव पक्की करनी थी। भाईजी बेचारे भकुआ बन गये। उधर ज्वाला सिंह दो सौ लोगों को लारियों में भरकर ले गये थे, जो लगातार उनकी जय-जयकार कर रहे थे।"[2] ये लोग अपने शक्ति और पैसे के बलबूते पर उम्मीदवार बनते है।

आज चुनाव संपत्ति एवं वर्चस्व के ईर्द-गिर्द धूमती रह गयी है। भ्रष्ट राजनीतिज्ञ चुनाव जीतने के लिए वोटों को पैसा देखकर खरीद लेता है। 'प्रलय और मनुष्य' नामक कहानी में वोट खरीदकर जीतनेवाले एक नेता का ज़िक्र हुआ है - "यह एक सदस्य है असम्बली का। राजनीति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। पर राजनीति के बिना अर्थनीति का कोई मतलब नहीं होता प्रजातंत्र में, इसलिए चीनी मील से कमाई दो लाख रुपये लगाकर इसने धारा सभा की एक सीट खरीदी थी।"[3]

राजनीतिज्ञ अवाम के अशिक्षा एवं गरीबी का लाभ उठाता है। वे उन्हें चुनाव के एन मौके पर रुपया एवं ज़रूरी चीज़े देकर उनसे वोट खरीदने की कोशिश करते हैं। 'अग्निबीज' के कांग्रेसी उम्मीदवार ज्वाला सिंह चुनाव के समय

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 28
2. वही - पृ. 28
3. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 228

में ऐसे चाल चलाता हैं - "ज्वाला बाबू ने चुनाव अभियान के दौरान जगह-जगह लोगों में बाँटने के लिए सैकड़ों खद्धर के कुर्ते, जनानी धोतियाँ और कम्बल मँगवाये थे। हर दिन घर से निकलने के पहले जीप में कुछ कपडे और नोटों की गड्डियाँ रख दी जाती थीं। ....कुछ चुने हुए लोगों से ज्वाला बाबू एकान्त में मिलते और कुछ कम्बल और कपड़े जीप से उतारकर उनके पास रख दिये जाते और साथ में पानदान और थर्मस आदि लेकर चलनेवाला अंग-रक्षक उनका हैण्ड-वैग ले जाता। पोलिंग के इन्तजाम के लिए उन लोगों के हाथों में नोट रख दिये जाते।"[1]

चुनाव कुचक्र इस सीमा तक भयावह हो गया है कि लोगों के मन में मानवीयता का लोप हो गया है। अमानवीयता और अनैतिकता चुनाव का आधार बन गईं। अपनी जीत के लिए वे लोग विपक्ष के लोगों पर कुप्रचार के तंत्र का प्रयोग करते है। 'हंसा जाई अकेला' नामक कहानी में कांग्रेस की स्वयंसेवक सुशीला और हंसा के रिश्ते को अनैतिक संबन्ध घोषित किया जाता है। "दूसरे दल के लोगों ने चिट्ठियाँ भिजवायी - सुशीला जी को यहाँ से बुला लिया जाए। जनता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। ...चुनाव के दो दिन पहले उन्हें नोटिस मिली कि वह बापू के आदर्शों को तोड़ रही है। इसलिए उन्हें काम से अलग किया जाता है।"[2]

चुनाव में जीतने के लिए राजनीतिज्ञ किसी भी हद तक गिर जाता है। लोगों को डराकर, धमकाकर, उनके ऊपर दबाव डालकर आतंक फैला देते हैं तथा

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 114
2. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 219

लोगों के वोटों को ठग लेते हैं। 'अग्निबीज' में इसका अंकन हुआ है। ज्वाला सिंह चुनाव जीतने के लिए अपने साथियों को समय-समय पर आदेश देते रहते हैं। उनके कहने के अनुसार साथी लोग हरिजनों को पोलिंग बूथ में घुसने ही नहीं देते है। तथा उनके नाम पर जाली वोट डालते हैं। चुनाव के इंतजाम के बारे में ज्वाला सिंह के कार्यकता बजराम मुंशी को बताता है - "वहाँ तैयारी तो पूरी है। सुबह पाँच बजे ही हर चमरौटी के इर्द-गिर्द बन्दूक के फायर हो जाएँगे। लोग मुश्तैदी से तैनात हैं। साथ ही हमारे कार्यकर्ता अन्दर जाकर उन्हें निकलने के लिए कहते हुए भी नगेसर के बदमाशों से गम्भीर खतरे की बात बताकर उन्हें जहाँ का तहाँ रोक दोंगे उनके नाम पर जाली ओट भी सुबह के पहले ही दौर में पड़ जाएँगे।"[1] राजनेताओं के आतंकभरी छल-कपट के तहत लोगों के मत अधिकार का हनन होता है। वे सही चुनाव नहीं कर पाते हैं। नतीजतन अधिकार में भ्रष्ट लोगों की पकड़ मज़बूत हो जाती है।

चुनाव में प्रचार की अहम भूमिका होती है। प्रचार जितना प्रभावशाली होता है, उम्मीदवार के लिए वह उतना ही लाभदायक बन जाता है। प्रचार में विरोधी पक्ष की कमियों का तथा अपने खूबियों का एलान होता है। राजनीतिक कार्यकर्ता एक-दूसरे के प्रचार को क्षीण पहुँचाने के लिए कार्यरत हैं। 'अग्निबीज' उपन्यास में इस तथ्य का हूबहू वर्णन हुआ है। समाजवादी दल के नगेसर यादव के प्रचारक कार्यकर्ता अगिया बैताल मकनपूर की सभा में भाषण दे रहे थे। साम्यवादी

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 117

नेता हरगोन सिंह वहाँ मौजूद थे। उन्होंने अगिया बौताल से कुछ सवाल किया गया। ऐन मौका पाकर कांग्रेस के ज्वाला सिंह के गुंड़ों ने झगडा शुरू किया तथा सभा तुडवाने का कार्य करते हैं - "शाम को मकनपूर की सभा में इतनी भीड़ देखकर अगिया बैताल का सीना फूल गया। लगा दहाड़ने। हरगोन सिंह ने कुछ सवाल किया, लेकिन जवाब माँगने वाले दूसरे लोग बड़ी संख्या में उपस्थित थे। लाठियाँ चलने लगीं और देखते-देखते अगिया बैताल का सारा शरीर भुरकुस हो गया।"[1] अगिया बैताल को अस्पताल पहुँचाया जाता है। पुलिस ज्वाला सिंह के कहने के अनुसार साम्यवादी नेता हरगोन सिंह को आरोपी ठहराकर गिरफ्तार किया जाता है। इस प्रकार चुनाव भ्रष्ट बनता जा रहा है। ज्वाला सिंह के चुनाव जीतने के पीछे उनकी कूट नीतियाँ कार्यरत हैं। पूरे उपन्यास में ज्वालासिंह का आतंक बना रहता है। मार्कण्डेय ने अपने साहित्य में चुनाव के दौरान होनेवाले राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ अंकन किया है। यहाँ डॉ. विवेकीराय का कथन समीचीन लगता है - "गाँव की स्वातंत्र्योत्तर उखडन और टूटन में सबसे अधिक प्रभाव चुनाव का है।"[2]

चुनाव और राजनीति ने ग्रामांचलिक जन जीवन को भ्रष्ट बना दिया है। चुनाव की राजनीति को दलबन्दी, आपसी वैमनस्य, झगड़े, हत्या, आगाजनी, चोरी, झूठा केस, खेत कटाई आदि ने भ्रष्ट कर दिया है। नतीजतन ग्रामांचलिक जन-जीवन तहस-नहस हुआ है।

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 116
2. डॉ. विवेकीराय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामजीवन - पृ. 396

3.4 राजनीति और भ्रष्टाचार

जैसे कि पहले सूचित किया गया वर्तमान राजनीति की सबसे बड़ी विसंगति राजनीतिक व्यवस्था का भ्रष्ट होना है। राजनीतिज्ञों के सत्ता में बने रहने की होड़, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद आदि ने राजनीतिक माहौल को कलुषित बना दिया है। देश की राजनीति आज सत्ता स्वार्थ की अन्धकार में रास्ता भटक रही है। "देश में बहुमुखी राजनीति का पतन हुआ है। उसने नैतिकता के सभी मूल्य ध्वस्त कर दिए। अब जनता के सभी मसले चाहे वे रोटी के हों, चाहे धर्म के, वोट की नीति से तय होने लगे। सत्ता द्वारा भ्रष्टाचार और दुश्चरित्रता के संरक्षण तथा राजनीति के गठजोड़ ने जनजीवन में असहायता और असुरक्षा की भावना भर दी। वोट की राजनीति में संकीर्ण जातिवाद और गुटबंदी को भरपूर प्रश्रेय दिया। परिणामस्वरूप जनता का विश्वास सभी प्रकार की संवैधानिक इकाइयों से उठ गया।"[1] स्वार्थी एवं भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के दखलअंदाजी से देश की विकास की राहें अवरुद्ध हो गई हैं।

3.4.1 अर्थलोभ की पूर्ति

राजनेता के लिए राजनीति एक पेशा बन गई है। अपनी स्वार्थ पूर्ती ही उनका एकमात्र लक्ष्य रह गया है। वह राजनीति को पैसे कमाने के उत्तम मार्गे के रूप में अपनाता है। चुनाव जीतने के बाद नेता लोग अपना रिश्ता आवाम से काटकर सिर्फ बडे पूँजीपतियों और भूस्वामियों के साथ बनाना चाहता है ताकि

---

1. डॉ. रमेश देशमुख - आठवें दशक की हिन्दी कहानियों में जीवनमूल्य - पृ. 146

इनसे पैसे कमा सके। इन राजनीतिक नेताओं की चरित्रहीनता का इस्तेमाल जमींदार तथा पूँजीपतियाँ करते हैं। 'उत्तराधिकार' कहानी के जोगेश बाबू ज़मींदारी उन्मूलन के बाद अपनी जायदाद की रक्षा राजनीति के ज़रिए करना चाहते हैं। इसलिए उसने अपने जिले की कांग्रेस कमेटी को हर तरह की आर्थिक मदद दी, नेताओं को खरीद कर अपना दरबारी बना भी लिया। राजनीतिक नेताओं और पूँजीपतियों का गठजोठ से सामाजिक हित को बाधा पहूँचती है।

'प्रलय और मनुष्य' कहानी में फंतासी के जरिए राजनीतिक स्थितियाँ पर व्यंग्य किया है। कहानी में बाढ़ में फंसे राजनेता भी ऐसे ही आदमी है जिनके लिए राजनीति पैसा कमाने का अच्छा मार्ग है। मेंढक नेता के परिचय देते हुए व्यंग्य रूप में कहता है कि - "यह एक सदस्य है असम्बली का। राजनीति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं पर राजनीति के बिना अर्थ नीति का कोई भी मतलब नहीं होता प्रजातन्त्र में। इसलिए चीनी मील से कमाये दो लाख रुपये लगा कर इसने धारा-सभा की एक सीट खरीद ली। कभी उस पर बैठ जाता, कभी नहीं, पर इस कुर्ते की हर जेब में इसने बीसियों संस्थाएँ पाल ली थी। वे दूध देती थीं। जब मन में आता, दूह लेता। 'महिला सेवा कर्म' से लेकर 'बाल विचार परिषद' तक और 'साहित्य धर्म' से लेकर 'लोक जीवन अध्ययन मण्डल' तक अपनी सेवाओं का विस्तार किया था"[1] जनसेवा की आड़ में चाल चलानेवाले राजनीतिज्ञों की ओर

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 233

यहाँ इशारा किया गया है। ये राजनीतिज्ञ षडयंत्रों के द्वारा अपनी जेब भरते हैं। 'प्रलय और मनुष्य' की कहानी के संबन्ध में विवेकीराय का मंतव्य है कि "एक खास तबके में नए जीवन मूल्य की भाँति विकसित होते भ्रष्टाचार की प्रकृति को कथाकार ने बहुत ही प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया है।"[1]

ग्रामांचल की राजनीति का मूल केन्द्र पंचायत होता है। पंचायती राज के पीछे यह इच्छा रही थी कि इसके जरिए लोग राजनीति में प्रभावी भागीदारी कर सकेंगे। इसके जरिए सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन सक्षम बन जाएंगे। लेकिन भ्रष्ट सरपंच का लक्ष्य अपनी संपत्ति की वृद्धि तक रह गया। 'बातचीत' कहानी का पात्र रामू सरपंच के बारे में कहता है - "पंचाइत बनी थी किसानों के फायदे के लिए, लेकिन सरपंच हो ही गए गयादीन ठाकुर। खूब मुट्ठी गरम होती है।"[2] 'आदमी की दुम' कहानी का ग्राम सभापति मिसिर जी भी इससे अलग नहीं है। वह समाज विकास के नाम पर अपनी संपत्ति की वृद्धि ही चाहता है। इस कहानी की जरिए मार्कण्डेय ने राजनीति के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है। ग्राम सभापति के बारे में कहानी का ग्रामसेवक कहता है - "मिसिर जी हमारी ग्राम सभा के सदस्य हैं। धर्मपरायण आदमी हैं। दोनों जून पूजा करते हैं और बात-बात में रामायण की चौपाई सुनाते हैं। बड़ी माया है इनके पास। जगह-जमीन, रुपया-पैसा, इज्जत-बात का क्या कहना। सामने ही ट्यू बेल है और उसी के बगल में यह लम्बा दालान बनवा दिया है उन्होंने और इसमें सरकारी कर्मचारी पाँच-पाँच रुपये महीने किराये

---

1. डॉ. विवेकीराय - हिन्दी कहानी : समीक्षा और संदर्भ - पृ. 69
2. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 206

पर रहते हैं। पान और छोटे सौदे-सुलीक की दुकान भी उन्होंने खुलवा दी है। कई स्कूलों के वे मैनेजर और ब्लाक कमेटी के ऊँचे अधिकारी भी हैं।"[1] अधिकार में प्रवेश करते ही राजनीतिज्ञ समाज सेवक का मुखौटा पहनकर अपने स्वार्थपूर्ती में डूब जाते है।

3.4.2 राजनीतिज्ञों और सरकारी कर्मचारियों की मिलीभगत

राजनीतिज्ञ एवं सरकारी कर्मचारी दोनों अधिकारी वर्ग होते हैं। जिसके हाथ में अधिकार है, समाज में उसकी ही अहमियत होती है। राजनीतिज्ञ और सरकारी कर्मचारी अपने स्वार्थता के तहत एक गठजोठ बनाता है। दोनों के मिलिभगत के नतीजतन अधिकार का दुरुपयोग होने लगता है। फिलवक्त अधिकार का दुरुपयोग जितना राजनीति के क्षेत्र में होता है उतना अन्य किसी भी क्षेत्र में नहीं है।

राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ को चलाने के लिए सरकारी कर्मचारियों को मोहरा बनाता है। रिश्वत एवं राजनीतिज्ञों के आतंक के दबाव में वे भी उन लोगों के साथ देता है। पुलिस और राजनीतिज्ञों के गठजोठ को 'अग्निबीज' में बखूबी से उकेरा गया है। समाजवादी पार्टी के प्रचार हेतु अगिया बैताल भाषण दे रहे थे। साम्यवादी नेता हरगोनसिंह भी सभा में शामिल थे। कांग्रेस के ज्वालासिंह विपक्षवाले के चुनाव प्रचार को तुडवाना चाहते है। उनके गुड़े सोशलिस्ट पार्टी के प्रचार में मार-पीट करके सभा को भंग करते हैं। पुलिस ज्वालासिंह के कहने के अनुसार

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 413

कार्यवाही करती है। वह असली हमलावर के बजाय समाजवादी और साम्यवादी दलवालों को दोषी ठहराती है। ज्वालासिंह की ओर से थानेदार को पहले से ही हिदायत हो चुकी थी - "वह इन्तजार में था। उसने तुरंत कार्यवाही की। अगिया बैताल को उनके कई साथियों के साथ अस्पताल पहुँचाया गया और हरगोन सिंह तथा गाँव के दूसरे तीन चार लोगों को पकड़कर हवालात में बन्द कर दिया गया। थानेदार ने कलेक्टर को खबर भेजी, समाजवादियों और साम्यवादियों में चुनाव सभा के दौरान पहले बहस, फिर मारपीट हुई... साम्यवादी नेता हरगोन सिंह और उनके हमलावर साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया है।"[1] इस प्रकार राजनीतिज्ञ और सरकारी अधिकारियों के गठजोठ में अवाम शोषित रह जाता है।

राजनीतिक नेता अमीरों से पैसा वसूल करके चुनाव जीतते हैं। चुनाव जीतने के बाद उन अमीर लोगों की मांग के मुताबिक काम करते रहते हैं। नतीजतन अवाम शोषण के चंगुल में फसता है। राजनीतिज्ञ अधिकारों के ज़रिए अपने सगे-संबन्धियों की लालच की पूर्ती की जाती है। 'दौने की पत्तियाँ' में मार्कण्डेय ने इसका जिक्र किया है। सिचाई मिनिस्टर गाँव के अमीर व्यक्ति तिवारी के आर्थिक तथा अन्य सहायता से चुनाव जीते थे। इसलिए जब पंचवर्षिय योजना के अन्तर्गत बनाने वाले नहर की नाप तिवारी के खेत पर पड़ता है तो सिंचाई मिनिस्टर उसके खेत को बचाने के लिए गाँव से तार द्वारा इन्जीनियर को लखनऊ बुलाया गया और

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 116

आदेश हुआ कि नहर उधर घुमाकर खेत बचा लिया जाए। इसके कारण गाँव के गरीब भोलाकोइरी के एकमात्र खेत से नहर निकलवा देता है। भोला पागल बन जाता है। भ्रष्ट राजनीति के कारण अवाम शोषण का शिकार बनते रहते हैं। "राजनीतिक कुचक्र इस सीमा तक भयावह हो गया है कि देश के जीवन से सिद्धान्त और आदर्शों का लोप हो गया है। राजनीतिक दल-बदल, रोज़ सरकारों का बनना और गिरना, मुख्य मंत्री से लेकर क्लर्क और चपरासी तक मची हुई लूटपाट, नोच-खसोट एक विचित्र सी झापा धापी में आज मनुष्य बुरी तरह कुचला जा रहा है।"[1] राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ के लिए सरकारी कर्मचारियों को भी भ्रष्ट राजनीति का भाग बना देते हैं। राजनीतिज्ञ एवं सरकारी अधिकारियों के गठजोड के चलते आम सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं।

3.4.3 भ्रष्ट राजनीति का प्रतिरोध

आज़ादी के पहले भारत निस्वार्थ की राजनीति कायम थी। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर राजनीति भ्रष्ट बन गई है। "भ्रष्टाचार किसी भी रूप में क्यों न हो वह विध्वंसकारी और सामाजिक या मानवीय विकास के लिए अवरोधक की भूमिका में ही हमारे सामने हैं। राजनैतिक मूल्य संक्रमण के दौर में बदल गये है। गुण्डागर्दी, हत्या, बलात्कार, हिंसा, लूट-खसोट, रिश्वत-खोरी, कालाबाज़ारी, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, भाषावाद, धर्मवाद एवं क्षेत्रवाद जैसे विभिन्न विघटनकारी आतंकवादी घटनाओं को भ्रष्टाचार से ही सम्बद्ध माना जा सकता हैं, जिससे समाज की स्थिति पर प्रतिकूल

---

1. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास - पृ. 143

प्रभाव पड़ने का डर हमेशा बना रहता है।"[1] धीरे-धीरे लोग इस विकृत राजनीति से अवगत होने लगे और भ्रष्ट राजनीति का प्रतिरोध तथा विद्रोह करने लगे।

ग्रामीण लोगों को आसानी से भ्रमित किया जा सकता है। देश की ग्रामीण जनता जो अभी भी अशिक्षा एवं अज्ञान में फँसी है। वे अपने मताधिकार का सही उपयोग नहीं जानती। राजनीतिज्ञ समय-समय पर लोगों को कुछ आकर्षक बातों से बहकाकर उसके मताधिकार को ठग लेते हैं। 'हंसा जाई अकेला' कहानी का बाबूसाहब गाँव के चुनाव में कांग्रेस के विरुद्ध लड़ रहे हैं। वे चुनाव जीतने के लिए गाँववालों को दावतों पर बुलाकर, उसे बहका-फुसलाकर वोटों को अपनाना चाहते हैं। हंसा कांग्रेस का स्वयंसेवक हैं। वे कांग्रेस के प्रति आस्थावान है। वह विपक्ष के इस राजनीतिक षडयंत्र से अवगत है। हंसा गाँववालों को राजनीति के इस 'मधुर षडयंत्र' से अवगत कराना चाहता है। वह गाँववालों से कहता है - "बाबू साहब जो कहें मान लो! पूड़ी-मिठाई राजा के तम्मू में खाओ। खरचा खोराक बाबू साहब से लो और मोटर में बैठो। लेकिन कांग्रेस का बकसा याद रखो। वहाँ जा कर, खाना-पीना भूल जाओ? कांग्रेस तुम्हारे राज के लिए लड़ती है। बेदखली बंद होगी। छुआछूत बंद होगा। जनता का राज होगा।"[2] हंसा इस प्रकार गाँववालों को सोचने के लिए सक्षम बनकर विपक्ष के राजनीतिक षडयंत्र का प्रतिरोध करता है।

---

1. डॉ. संजय कुमार : आजाद भारत की महिलाओं की कहानियों के आईने में हमारा समाज - पृ. 142
2. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 218

गाँववाले बाबू साहब के कैम्प में खाना खाते हैं। उन्हीं की मोटर में वोट डालने आते हैं और वोट कांग्रेस के बकसे में डालते हैं। अतः बाबू-साहब की हार और कांग्रेस की जीत होती है। दरअसल कांग्रेस की जीत गाँववालों द्वारा भ्रष्ट राजनीति के प्रतिरोध का फल है।

भ्रष्ट राजनीति की यह नीति है कि वह अपने विरोधियों का कुप्रचार करके उन्हें समाज के सामने नीचा दिखाती है। 'हंसा जाई अकेला' में बाबू साहब विपक्ष के हंसा और सुशीला के आपसी संबन्ध का कुप्रचार करता है जिसके कारण पार्टी सुशीला को प्रचार काम से अलग करती है। इस राजनीतिक षड्यंत्र से अवगत सुशीला विपक्ष का विरोध करती है। वह इस कुप्रचार से दुखी नहीं बनती तथा कांग्रेस के प्रचार में अपना सहयोग सशक्त रूप में देती है। कांग्रेस की जीत के पीछे मुख्य रूप से सुशीला का प्रयत्न है। गाँव में कांग्रेस पार्टी की जीत विपक्ष के भ्रष्ट राजनीति के प्रतिरोध के रूप में होती है।

'उत्तराधिकार' कहानी का पात्र सरन शिक्षित युवक है। वह एक महाविश्वविद्यालय में सहायक प्रबंधक है। उनके पिता जोगेश बाबू गाँव के प्रमुख जमींदार थे। वे जानते थे कि "जायदाद की रक्षा राजनीति में हाथ होने से ही हो सकती थी, और जोगेश बाबू सरन को राजनीति में डालना चाहते थे।"[2] सरन राजनीति के भ्रष्टाचार और अपने पिता के लालच तथा ज़मीनदारी चरित्र से अवगत था। वह जानता था कि राजनीति में प्रवेश करने से पिता के हितार्थ

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 308

अनैतिक काम में सहयोग देना पडेगा। इस सोच के कारण वह राजनीति में प्रवेश न करके घर से दूर विश्वविद्यालय का सहायक प्रबन्धक बनने गया ताकि राजनीति की झंझट से बच सके। सरन का इस पलायन में राजनीतिक भ्रष्टता का प्रतिरोध दिखाई देता है। "वरना सरन को क्या कमी थी, जो वह एक महा विश्वविद्यालय में सहायक प्रबंधक बनने जाता।"[1]

मार्कण्डेय के 'अग्निबीज' में राजनीतिक भ्रष्टता तथा उसका प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यास का ज्वालासिंह स्वार्थी एवं भ्रष्ट राजनीतिक नेता है। सुनीत उसका पुत्र है। पिता के जन विरोधी कार्य उसे गहराई से तोड़ देता है। मर्यादा के कारण वह अपने पिता का प्रत्यक्ष विरोध नहीं कर पाता है। इसके बजाय वह मनीकापुर में अपने मित्रों के साथ नवजागरण फैलाने में क्रियार्यत रहता है। वह नई चेतना का वाहक बन कर सामने आता है। राजनीतिक असलियत से वह वाकिफ था। अपनी माँ से वह कहता है - "सत्ता का भाव आदमी को अंधा कर देता है, माँ। प्यार सत्ता के भाग्य में नहीं होता। भय और स्वार्थ के कारण चापलूस लोग सत्तावाले को भ्रम के कुहासे में कैद रखते हैं, जिससे वह समझता रहे के सारे लोग उसे प्यार करते हैं.... जिस मतदान और जय-जयकार की बात तुम कर रही हो, वह पैसे और शक्ति का चमत्कार है माँ, प्यार का प्रदर्शन नहीं।"[2] सुनीत की हमदर्दी उन लोगों के साथ है जो ज्वालासिंह यानी उसके पिता के शोषण और

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 108
2. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 151-152

अन्याय के शिकार हैं। पिता की विरासत स्वीकारने के बजाय वह आदर्शवादी साधो काका की राह पर चलने का निश्चय करता है। वह कहता है - "हम वहाँ से चलेंगे, जहाँ साधो काका ने छोड़ा है।"[1] वह राजनीतिक तथा सामाजिक विषमताओं को समाप्त कर एक नए समाज की स्थापना का आकांक्षी है।

मार्कण्डेय की कहानियों में भ्रष्ट राजनीति के विरुद्ध आक्रोश और विद्रोह नहीं बल्कि प्रतिरोध की चेतना है। हंसा, सुशीला, सरन, सुनीत के द्वारा मार्कण्डेय ने भ्रष्ट राजनीति के प्रतिरोध करने का प्रयास किया है। प्रतिरोध की चेतना उनके रचनाओं में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न है।

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामांचलिक परिवेश में स्वतंत्रता प्राप्ति ही वस्तुतः वहाँ की राजनीतिक चेतना का मूल प्रेरक तत्व है। गाँवों में राजनीतिक चेतना की लहर पंचायती राज मताधिकार, संविधान के धर्म निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक स्वरूप आदि राजनीतिक कार्यों से आई है। देश की आज़ादी के लिए गाँव-गाँव जगानेवाले नेता आज़ादी के बाद उसके अहमियत को ही भूल गये हैं। राजनीति का कार्यक्षेत्र सत्ता लोलुपता, पैसा, गुड़ई आदि तक रह गया है। मार्कण्डेय ने अपने कथा साहित्य में राजनीति की मूल्यहीनता तथा अनैतिकता का चित्रण कर परिवर्तन की जरूरत पर बल दिया है।

यह बात जाहिर हो चुकी है कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता अवाम की खुशहाली के लिए काफ़ी नहीं होती। राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 68

स्वतंत्रता भी लाजिमी होती है, नहीं तो राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक बन जाती है। आगे मार्कण्डेय के कथा साहित्य के जरिए स्वातंत्र्योत्तर ग्रामांचलिक आर्थिक परिवेश पर जाँच पडताल करेंगे।

3.5 स्वातंत्र्योत्तर ग्रमांचलिक जीवन का आर्थिक संदर्भ

व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में अर्थ की भूमिका अहम होती है। वह जीवन की ज़रूरतों की पूर्ति करती है। आजकल अर्थ ही समाज में व्यक्ति के मान-सम्मान तय करता है। दरअसल अर्थ के बगैर विकास निरर्थक बन जाता है। देश की आर्थिक उतार-चढ़ाव सामाजिक विकास में उलझन पैदा करता है। "संतुलित अर्थ व्यवस्था राष्ट्रीय जीवन का प्रमुख आधार होती है। जीवन के बहुमुखी क्रिया व्यापारों का स्वरूप इसके समुचित क्रियान्वयन से होता है। किसी भी अर्थ व्यवस्था की विकसनशील स्थितियाँ ही वहाँ के जनजीवन में चेतना उजागर करने का प्रबल माध्यम हुआ करती है।"[1]

सदियों पहले भारतीय ग्रामांचलिक जीवन आर्थिक स्तर पर ज्यादातर आत्मनिर्भर एवं संतुलित था। विदेशी आक्रमणकारियों के तहत देश की आर्थिक स्थिति जर्जर हो गयी। लंबे संघर्ष के दौरान सन् 1947 में देश को आज़ादी मिली। दरअसल तब तक देश की आर्थिक स्थिति पूर्ण रूप से उजड़ गयी थी। पूरा देश अकाल महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और जनसंख्या वृद्धि, शरणार्थी समस्या का

---

1. डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना - पृ. 147

शिकार बना हुआ था। सरकार ने देश के विकास के लिए आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया। सन् 1950 में योजना आयोग की गठन हुआ। इसके तहत 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की स्थापना हुई। इस पद्धति के अंतर्गत ग्रामांचलिक तथा कृषि के विकास को ज़ोर दिया गया। "योजना आयोग की स्वीकृति पर प्रथम पंचवर्षीय योजना। अप्रैल 1951 से लागू हुई - इसका कार्यकाल 31 मार्च 1956 तक था। प्रथम पंचवर्षीय योजना में 2069 करोड़ रुपए की राशि व्यय हुई। कृषि के उत्पादन के साधनों में विकास और आर्थिक विषमता कम करना इस योजना के मुख लक्ष्य थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास को उसका रूप और ग्रामीण विस्तार को उसका अभिकरण माना गया। प्रथम योजना में 123000 ग्रामों में रहनेवाले लगभग 8 करोड़ व्यक्तियों के लिए सम्बद्ध विकास कार्यक्रम जारी हुए। इस योजना में कृषि और सामुदायिक योजना पर 354 करोड, सिंचाई और बिजली पर 647 करोड़, यातायात और सिंचाई पर 571 करोड रुपये व्यय किए गए।"[1] भारत की अर्थव्यवस्था बड़ी हद तक गांवों पर अवलंबित है, इसलिए गाँव तथा कृषि का विकास देश के प्रगति के लिए लाजिमि है।

द्वितीय पंचवर्षीय विकास पद्धति उद्योग प्रधान बना। उद्योग प्रधान अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद की गति तेज़ हो गयी। "पहली योजना में धन का एक तिहाई कृषि विकास पर था तो इसमें एक चौथाई मात्र।"[1] पूँजीवाद ने अमीर और गरीब के बीच

---

1. डॉ. राजेन्द्र कुमार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ग्रामजीवन और संस्कृति - पृ. 14
2. डॉ. सुरेन्द्रप्रताप यादव - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना - पृ. 83

की खाई को बढ़ा दिया। एक ओर अमीरी बढ़ी तो दूसरी ओर गरीबी भी। स्वातंत्र्योत्तर काल में अवाम के सुखद सपने टूट गये। ज़मींदारी उन्मूलन, भूदान पद्धति, कुटिर उद्योग कृषि की नयी वैज्ञानिक प्रविधियाँ, पशुपालन आदि तमाम पद्धतियों के जरिए ग्रामीण की आर्थिक स्थिति में जरूर बदलाव आया, फिर भी इस बदलाव को पूर्णतः संतोषजनक नहीं कहा जा सकता था क्योंकि राजनीति के चंगुल में फंसकर ज्यादातर योजनाऐं आगे नहीं बढ पायीं।

मार्कण्डेय के कथा साहित्य में आर्थिक विषमता एवं शोषितों का जीवन अपनी पूरी व्यथा एवं पीड़ा के साथ विद्यमान है। खासकर उन्होंने आर्थिक विकास योजनाओं के तहत भारत के ग्रामांचलिक आर्थिक बदहालत का बड़ा ही सजीव और मार्मिक वर्णन किया है। मार्कण्डेय के कथा साहित्य के जरिए स्वातंत्र्योत्तर ग्रामांचलिक आर्थिक व्यवस्था का असली खाका जाहिर होता है।

3.6 ग्रामांचलिक आर्थिक दुर्दशा का कारण

स्वातंत्र्योत्तर आर्थिक विकास योजनाओं के बावजूद ग्रामांचलिक आर्थिक स्थिति पिछड़ी ही रह गयी। योजनाओं के बदौलत जितना विकास होना चाहिए था वह नहीं हो पाया। देश भर का पेट भरनेवाले गाँव खुद ही रोजी-रोटी की समस्याओं से जकड़ गया। ग्रामीणों की अशिक्षा, अज्ञान और गरीबी का फायदा उठाकर संपन्न वर्ग उनका शोषण करता रहा। गरीबी, ऋणग्रस्तता, बंधुआ मंजदूरी उनकी नियती बन गयी। ग्रामांचलों की असलियत यह रही कि गरीब दिन प्रतिदिन गरीब तथा अमीर दिन-ब-दिन ज्यादा संपन्न होते गये। गरीबी और बरोजगारी की

समस्या गाँवों को खोखला करती गयी। मार्कण्डेय की पैनी निगाह ग्रामीण आर्थिक विषमताओं का छानबीन तह तक किया है। मार्कण्डेय के मुताबिक ग्रामांचलों की असलियत कुछ इस प्रकार है कि "सत्तर प्रतिशत लोग निरंतर भूख और नंगापन में आज भी जीवन बिता रहे हैं। बच्चों को रात दिन में आधी रोटी मयस्सर नहीं है और वहीं बगल में बैठा मामूली-सा ज़मींदार तथा बडा किसान योजना का सारा रस पीकर मस्त हो गया है। जो स्वयं ले सकता है लेता है, बाकी के लिए अपने दलाल खडे करता है और उसके नाम पर सब कुछ लेकर हर दिन मोटा होता जा रहा है।"[1]

आगे मार्कण्डेय के कथा साहित्य के जरिए आर्थिक विषमताओं का पड़ताल करेंगे।

3.6.1 बेरोज़गारी

दिन-ब-दिन स्वातंत्र्योत्तर भारत के गाँवों में बेरोज़गार की समस्या बढ़ती गयी। भूमि का असमान वितरण, कृषि के लिए प्राकृतिक साधनों पर ही आश्रित होना, कुटीर उद्योग का अभाव, जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि आदि ने बेरोजगारी समस्या को प्रश्रय दिया है। सरकार की ओर से उपलब्ध रोजगार की पद्धति इतनी सीमित है कि बेकारों को उसमें समा लेना कठिन हो गया है। "भारत में नियोजित अवधि में निर्विवाद रूप से आर्थिक विकास हुआ, परन्तु यह विकास स्तर निर्धारित लक्ष्यों से कम रही है। कुछ योजनाओं में तो संवृद्धि स्तर काफी नीचा रहा है। ऐसी

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 136

ही दशा में निश्चय ही रोजगार के अवसरों में आशानुकूलन वृद्धि नहीं की जा सकी जिससे बेरोजगारी की मात्रा में वृद्धि होना स्वाभाविक है। हमारे देश के विभिन्न योजनाओं में अपनायी गई विकास युक्तियों एवं रोज़गार संभावनाओं के बीच विरोधाभास रहा है। माना यह गया था कि यदि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का विस्तार एवं उत्पादन वृद्धि होगी तो रोजगार अवसरों में अपने आप वृद्धि हो जायेगी, परन्तु ऐसा नहीं हो सका।"[1] बेकारी की समस्या देश की प्रगति में भारी नुकसान पहुँचाती है।

गाँव के ज्यादातर लोग कृषि और उससे जुड़े व्यवसाय से आजीविका चलाता है। इसके नाते प्राकृतिक आपदाओं और कृषि क्षेत्र में यंत्रों का उपयोग भी बेकारी की वजह बन गया है। "भारतीय ग्राम जीवन में व्याप्त बेकारी के तीन पक्ष हैं, एक है मौसमी बेरोज़गारी इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कृषि से है और यह प्रायः फसल के कुछ महीनों के अतिरिक्त वर्ष-भर चलती रहती है। फसल आदि के कार्य समाप्त होने पर यह आरम्भ होती है और फसल बोने आदि तक चलती है। बेकारी का दूसरा पक्ष संरचनात्मक है। यह बेकारी प्रायः वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण होती है, क्योंकि नयी प्रविधियों के विकास से नयी स्थितियाँ जन्म लेती हैं। तीसरा पक्ष है सामान्य बेकारी का। यह प्रायः सभी देशों में किसी न किसी स्तर पर व्याप्त मिलती है।"[2] मार्कण्डेय ने इन तथ्यों को अपने कथा साहित्य में बारीकी से उकेरा है।

---

1. बाई पी सिंह - भारतीय अर्थव्यवस्था - पृ. 100
2. डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना - पृ. 164

गाँव के ज्यादातर लोगों की आजिविका कृषि पर निर्भर है। कृषि करने के लिए मौसम का अनुकूल होना ज़रूरी होती है। सूखा, अतिवृष्टि, ओले आदि प्राकृतिक आपदाओं में अच्छी बनी खेती बर्बाद हो जाती है। मार्कण्डेय की 'बातचीत' कहानी में गाँव के चौपल पर हो रही बातचीत के जरिए सूखा की विभीषिका को दिखाया गया है। रामू बरई चौथी दादा से कहता है - 'दादा गाँव तो हाय-हाय कर रहा है, ताल में धान की पकी पकायी फसल थोड़े-से पानी बिना चौपट हो रही है और भइया, अगर दो दिन में पानी न बरसा तो पेट के लाले पड़ जाएँगे, लाले, फिर यह सब लहँगा, टिकुली बिक जाएगी।"[1] उनकी 'दाना भूसा' कहानी में भी मौसमी बेरोजगारी की समस्या को बखूबी से उकेरा गया है। गाँव में अकाल पड़ने से बंसन बेकार हो गया है। उसका घर भूसा से बेहाल है। बंसन की पत्नी राजी चिंताग्रस्त है - "गाँव में किसके घर पेट भर भोजन हो रहा है इस ठाले में.... साल-साल भर मरने जरने पर भी एक महीने का दाना-भूसा घर में नहीं आता।"[2] प्राकृतिक आपदाओं से खेती चौपट हो जाती है तथा किसान बेकार बनते हैं।

3.6.2 मशीनिकरण

स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यापक स्तर पर कृषि के क्षेत्र में यन्त्रों का प्रयोग किया गया। गाँव के बडे किसान सींचाई के लिए पंपिंग सेट तथा जुताई के लिए ट्रैक्टर का प्रयोग करने लगे। नतीजतन उन लोगों को हलवाही करनेवाले मज़दूरों

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 206
2. वही - पृ. 320

की जरूरत नहीं के बराबर होती है। 'अग्निबीज' में विदेश्वरी पांडे खेती के लिए यंत्रों का उपयोग करने लगा। नतीजतन विंदा भगत जैसी उनके खेतिहर मज़दूरों को आपने काम से हाथ धोना पडता है। "पांडे ने ट्रैक्टर खरीदने के बाद बैल बेच कर हलवाहों की छुट्टी कर दी थी और उनको हलवाही में दिये खेतों पर कब्जा कर उन पर भी ट्रैक्टर चलवा दिया था।"[1]

'मधुपुर के सिवान का एक कोना' नामक कहानी भी मशीनिकरण के दौरान गाँव में उभरी बोरोजारी की समस्या को उद्घाटित करती है। मज़दूरों के मन में बेकार होने का डर बना रहता है। कहानी का बचन कहता है - "ठाकुर-बामन, सब तो जोतने लगे। अब तो ट्रेक्टर आ रहा है, ट्रेक्टर चाहे तो एक दिन में सारे गाँव का खेत जोत - बो दे।"[2] कृषि के क्षेत्र में यंत्रों के उपयोग से एक ओर खेतिहर मज़दूर बेरोजगार होता गया तो दूसरी ओर बडे कृषक यानी ज़मींदार वर्ग अमीर बनते गए।

3.6.3 नगरोन्मुखता

मार्कण्डेय की 'साबुन' नामक कहानी गाँव के पढे लिखे युवकों की बेरोजगारी की समस्या को उद्घाटित करती है। पढे लिखे को गाँव में काम का कोई मौका नहीं है। नतीजतन उन्हें नौकरी की तलाश में शहर जाना पडता है। 'साबुन' कहानी का राजेश काम की तलाश में शहर जाता है। काम नहीं मिलने से वह

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 47
2. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 425

निराश हो जाता है। राजेश माँ को चिट्ठी लिखता है - "तुम सोचोगी, बिना बताये ही चला गया। पर बता कर जाना कैसे होता?... शहरों में चिकने लोगों का राज्य है जो सिफारिश और घूस पर जीते हैं। मैं क्या कर सकूँगा यह आज भी नहीं समझ सका हूँ।"[1]

'चाँद का टुकडा' कहानी का सनोहर काम की तलाश में गाँव से दूर चला जाता है। वहाँ उसे सडक खोदने का काम मिल जाता है। लेकिन उनकी हालत संतोषजनक नहीं रही है। सनोहर भूखे पेट काम करता है। बारिश के कारण चौथे दिन काम बंद हो जाता है। तब तक भूख से सनोहर का हाल बिगड़ जाता है। फिर भी ठेकेदार मज़दूरी देने के लिए इन्कार करता है - "कई दिनों के लिए काम बंद हो गया। मज़दूरों ने अपना झउआ-फरसा सम्हाला और चले गये। जो बचे थे, उन्होंने ठेकेदार से कहा, साहेब सनोहर भूखों मर रहा है, उसकी चार दिन की मजूरी...। 'हफता पूरा भी नहीं हुआ' ठेकेदार बिगड़ कर बोला।"[2]

बेकारी की समस्या से गाँव के लोग शहरों की ओर जाते हैं। वहाँ जाकर अपनी जिन्दगी नये सिरे से शुरू करने की कोशिश करते हैं। 'अग्निबीज' उपन्यास का हुडदगी और छबिया काम की तलाश में कलकत्ता चले जाते हैं। वहाँ छोटा-मोटा काम करके जीविका चलाते हैं।

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 119
2. वही - पृ. 227

3.6.4 गरीबी

गरीबी भारतीय ग्रामीण जीवन की सबसे बडी समस्या है। ग्रामांचल का अवाम आज़ादी के पहले भी गरीब था और बाद में भी गरीब ही बना रहा। आज़ादी के पहले भारतीय गाँवों की गरीबी का कारण विदेशी शासन था। यह कटु सत्य है कि स्वातंत्र्योत्तर गाँव की तबाही की वजह देशी सत्ता और उसके सूत्रधार है। आर्थिक विकास योजनाओं का फायदा अवाम तक सही माइने में नहीं पहुँच सका। गरीबों की किस्मत में गुलामी, भूख और अपमान के सिवा कुछ नहीं रह गया है।

मार्कण्डेय ने 'सहज और शुभ' नामक कहानी में गाँव की गरीबों की जिंदगी का जिक्र यों किया है - "ये लोग बहुत गरीब थे, इसलिए अपनी ज़रूरतों के आगे शौक की बात जानते ही न थे। रुचि की चीज़ों में समय और शक्ति का खर्च एकदम न हो, इसी के लिए ज़रूरतमन्दों ने अपने लिए कुछ नैतिक नियम बना रखे थे।"[1] आर्थिक अभाव में फंसे इन लोगों के लिए पेट भर भोजन भी मयस्सर नहीं हैं।

मार्कण्डेय की 'दाना भूसा' कहानी में भूख से तड़पते ग्रामीण परिवार की त्रासदी को बखूबी से उकेरा गया है। गाँव में अकाल पड़ने पर ग्रामीणों की हालत और भी दयनीय बन जाती है। भूख की वजह से वसन का परिवार बेहाल है। घर के सब इसी इंतज़ार में बसन की प्रतीक्षा करते हैं कि वह ज़रूर उनके लिए कुछ

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 435

न कुछ खाने को ले आएगा। वसन कहीं से मिला गुड़ लेकर घर आता है। गुड में तमाम मरे हुए चींटे चिपके हुए रहते हैं, फिर भी उस गुड़ का रस बनाकर घरवालों को देने के लिए वह मज़बूर है। बसन पत्नी और बच्चों को रस देकर खुद भूखा रह जाता है; क्योंकि उसके लिए रस बचता ही नहीं है। भूखा-प्यासा लेटा हुआ वसन सपना देख रहा है - "वह उड़ता रहा, उड़ता रहा और धीरे-धीरे ऐसी जगह पहुँच गयी जहाँ रोटियों का एक बहुत बड़ा ढेर लगा हुआ था, इतना बड़ा कि कई बाँस की सीढ़ियाँ लगाकर भी उसके ऊपरी हिस्से को छूना मुशकिल था।"[1] गरीबों के नसीब में रोटी लिखा नहीं है। वे रोटी का सपना देखने के लिए ही विवश है।

'चाँद का टुकडा' नामक कहानी का सनोहर काम की तलाश में दूसरे गाँव जाता है। वहाँ उसे सडक निर्माण का काम मिलता है। ठेकेदार मज़दूरों को सप्ताहिक पैसा तय करता है। चार दिन तक बिना पैसे से काम करने के कारण वह कुछ खरीद नहीं पाया। उसकी भूख तीव्र हो जाती है - "कुछ देर आराम करने के बाद उसकी आँखें खुली तो एक लड़की रोटी का चेंगा बना कर खाती हुई, वहीं चलकर काट रही थी, उसके जी में आया कि दौड कर इस लड़की का गला दबा दे और उसकी रोटियाँ छीनकर खा जाए।"[2]

'अग्निबीज' के सागर का परिवार भी भूख से जूझता हैं। घर की हालत कुछ इस प्रकार है - "...गिनती की रोटियाँ जो जिसके हिस्से में पड़तीं, एक ही बार में मिल जाती थीं। दो लिट्टियों का पिसान होता तो चार में से हर को आधी ही

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 321
2. वही - पृ. 227

खाकर पानी पी लेना, एक नियम सा बन गया था।"[1] उपन्यास के छबिया के परिवार की हालत इससे अलग नहीं है - "दो दिन से वह पानी में भींग जाता था। कोई दूसरा कपड़ा न होने के कारण वह भींगा गमछा गार कर लपेट लेता और वैसे ही निखरहरी चारपाई पर सो रहा है। माँ-बाप देर-सवेर कहीं से दो सेर मकई लाते। उसे जल्दी-जल्दी कूट-पीसकर भात बनते, फिर कभी खाली नमक, कभी पानी में उबली सिधरी या चेल्हवा से खाकर सारा परिवार सो जाता।"[2]

'बादलों का टुकडा' कहानी का कथ्य 'दाना-भूसा' कहानी से मिलता-जुलता है। बेरोजगारी के कारण जसमा और उसके परिवार भूखे रहने के लिए विवश हैं। बच्चा कुपोषण का शिकार है। अब वह बुखार से तड़प रहा है। उसे खिलाने तथा इलाज करने के लिए घरवाले असमर्थ हैं।

'नौ सौ रुपये और एक ऊँट दाना' नामक कहानी के जरिए मार्कण्डेय ने गाँव की गरीबी का बेनकाब किया है। कहानी का 'मैं' यानी कथावाचक शहर से गाँव आता है। उन्हें लोकई को बारह आने देना हैं लेकिन उसके पास छुट्टा नहीं है। वह गाँव में तमाम लोगों के पास दस रुपया छुट्टा करने के लिए जाता है। लेकिन गाँव में पैसा गधे की सींग की तरह होता है। किसी के पास भी दस रुपया का छुट्टा नहीं है - "लोकई को बारह आने देने थे, पर मेरे पास, दस रुपये के नोट। क्या जाना था कि गाँव में पैसा गधे की सींग हो जाएगा। छब्बू बरई और

---

1. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 31
2. वही - पृ. 30

मोहन साव के यहाँ से बचनुवाँ लौट आया, पर नोट नहीं टूटा।"[1] जिससे जाहिर होता है कि स्वातंत्र्योत्तर ग्रामांचलिक जीवन आर्थिक अभाव से तबाह हो गया है।

3.6.5 ऋणग्रस्तता

गरीबी से झूझते ग्रामीणों के लिए ऋण लेने के बजाय कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा है। वह ज़मींदार एवं साहूकार से सूद पर ऋण लेने के लिए मज़बूर हो जाता है। ज़मींदार और साहूकार इन कर्जदारों से मनमानी ढंग से पेश आते हैं। कर्जदारों को साहूकार तथा ज़मींदारों का गुलाम बनना पड़ता है। उन्हें पैसा देने के बाद भी कर्ज से मुक्ति नहीं मिलती है। इसलिए 'बीच के लोग' कहानी का बुझावन कहता है - "लोग तो बाप दादा तक का करजा भरते चले आ रहे हैं। यह फाउदी दादा का बचपन का मजूर और क्या है। साल-साल हिसाब करके बियाज में से पइसा कटने पर भी कुछ मूल में नहीं जुडता जाता है। अगली कितनी पीढियों तक यह करजा चलेगा, कौन जानता है, लेकिन लोग भर रहे हैं।"[2] कर्ज के कारण गरीबों के पीढ़ी दर पीढ़ी शोषण का शिकार बनती है। 'मधुपुर के सिवान का एक कोना' कहानी के मुन्नन को अपने पिता द्वारा लिए गए पचास रुपये का कर्ज चुकाने के लिए दो वर्ष की आयु से जमींदार के घर नौकर बनना पड़ता है। तब से वह दिन-रात वहाँ मेहनत करता है। मालिक की मार और अत्यचार सहना उसकी मज़बूरी बन गयी है। मुन्नन पर होनेवाला अत्याचार देखकर नरेश कहता है -

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 106
2. वही - पृ. 482

"पचास रुपए करज ले कर इसका बाप क्या मरा, बेचारे की जिंनगी ही गिरों धर ली गई। आखिर क्या कसूर था इस बेचारे का?"[1]

'बादलों का टुकड़ा' कहानी का जसमा को भी कर्ज के बदले महाजन के घर में काम करना पड़ता है। बिना मज़दूरी से काम करने के कारण घर गरीबी से घिर गया है। अपने कुपोषित एवं बीमार बच्ची का इलाज भी उससे नहीं होता है। संपति के नाम पर जसमा के पास एक बकरी होती है, जिस से ही उसने बच्ची को जिन्दा रखा था। उसे भी कर्ज के बदले में महाजन का कारिंदा छुड़ा ले जाता है। अपनी मज़बूरी से दुखी जसमा कारिंदा से कहता है कि - "खोल लो और ले जाओ। मरेंगे, जिएँगे लेकिन यह करज का खटका तो छूटा। न मजूरी, न छतूरी, जब देखो दरवाजे पर ठढ़क्कर की तरह खड़े हैं कि यह कर दो, वह कर दो। दिन-दिन भर खटो और सरबउला एक रोश गुर पानी तक को नहीं पूछता... पचास रुपया करज क्या ले लिया, जिनगी बेच दी।"[2] ऋण के कारण ग्रामीण गरीबों की जिन्दगी बर्बाद हो जाती हैं।

3.7 धनलोलुपता और मूल्यों का ह्रास

धन के द्वारा ही जीवन में सुख और समृद्धि संभव है। इसलिए लोग धन कमाना चाहते हैं। दरअसल अत्यन्त धनलोलुपता मनुष्य को अंधा बना देती है। वह स्वार्थी, अमानवीय एवं निर्मम बन जाता है।

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 427
2. वही - पृ. 474

'चाँद का टुकडा' कहानी में मार्कण्डेय ने पैसे के पीछे लुप्त होती मानवता को दिखाया है। सडक निर्माण का काम करने के लिए दूर-दूर से मज़दूर आकर गाँव में बसे हैं। ठेकेदार ने सप्ताहित मज़दूरी तय किया है। मज़दूर गाँव के सहुअइनियाँ के दुकान से सामान खरीदते है। पैसा नहीं होने के कारण अनाज के लिए मज़दूरों को बदन के वस्त्र तक रेहन रखने पडते हैं - "एक ने पैसा नहीं दिया तो उसे तब तक के लिए, जब तक पैसा न दे, अपनी धोती वहीं धरनी पड़ी। ...सहुअइनियाँ चिल्लाकर कह रही थी, क्या ठिकाना तुम्हार लोग का, आज इहाँ कल उहाँ।"[1] धन लोलुपता ने मनुष्य मन से इन्सानियत को छीन लिया गया है।

'प्रलय और मनुष्य' कहानी में पैसे कमाने के लिए राजनीतिज्ञ द्वारा रचे गए षड्यन्त्र का अंकन हुआ है। प्रलय के बहाव के साथ आये नेता की अर्थलोलुपता को मार्कण्डेय ने यों अभिव्यक्ति दी है - "इसने बाढ़ देखकर तत्काल 'बाढ पीडित संघ' बनाया और सबसे पहले खुद दस हजार का दान देकर फंड़ खड़ा किया। इस सारे क्षेत्र में अनाज, कपडा बाँटने का काम संभाला। सरकार और जनता से लाखों लिया।"[2] इस तरह खड़ा किया फंड से ये लोग अपनी ही जेब भरते हैं। उनका लक्ष्य पीड़ितों की सहायता करना नहीं है बल्कि अपनी संपत्ति को बढ़ाना है।

धन की हाविश में 'दौने की पत्तियाँ' के इंजिनियर रिश्वत लेते हैं। पंचवर्षीय योजना के तहत बनते नहर के अंतर्गत गाँव के अमीर आदमी तिवारी का खेत भी आ जाता है। तिवारी के खेत को बचाने के लिए इंजिनियर उनके हाथ से रिश्वत

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 277
2. वही - पृ. 233

लेता है - "इन्जीनियर बड़ा हँसता था, यही हजार रुपये और एक मुर्रा भैंस, जो अब दी है। तभी दे देते तो बिना लखनऊ गये ही काम हो जाता। उनका तो यही काम है। जिस पार्टी ने रुपये ज्यादा दिये, उनकी ओर से फीते का रुख जरा सा मोड लिया। फिर नये शिकार, नये रुपये और इस तरह गाँव के गाँव चंदा करके अपनी हद इस खूबसूरती से बचा लेते हैं...।"[1] धन के लालच के कारण समाज में मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। दिन-ब-दिन बढ़ते आर्थिक लालच की वजह से गुनाह बढ़ता जा रहा है तथा संबन्धों में दरार भी बनती है।

3.8 आर्थिक सुधार योजनाओं की विफलता

स्वातंत्र्योत्तर भारत सरकार ने आर्थिक विषमताओं को सुधारने के लिए सरकारी स्तर पर ज़मींदारी उन्मूलन, पंचवर्षीय विकास योजनाऐं, कुटीर उद्योग, चकबंदी, भूदान सहकारी खेती, आदि अनेक योजनाऐं बनायी गई। दरअसल पूँजीपति, सरकारी अधिकारी तथा राजनीतिक नेताओं के हस्तक्षेप से लगभग सभी योजनाऐं लक्ष्य प्राप्ति नहीं कर पायी। अतः आर्थिक विकास योजनाओं के तहत गाँव की स्थिति सुधरने के बजाय और भी बिगड गई।

3.8.1 जमीनदारी उन्मूलन

स्वातंत्र्योत्तर भारत सरकार ने देश की उन्नति के लिए गाँव तथा कृषि विकास को अनिवार्य माना। किसान को भूमि उपलब्ध कराने तथा जमींदार के

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 202

आधिपत्य को समाप्त करने के लिए 'जमींदारी उन्मूलन' का कानून बनाया गया। "कई अवस्थाओं से गुजरता हुआ यह विधेयक संशोधित रूप में 10 जनवरी 1951ई. को विधान सभा द्वारा और 16 जनवरी 1951ई. को विधान परिषद् द्वारा पारित कर दिया गया। 24 जनवरी 1951ई. को राष्ट्रपति ने इस अधिनियम पर अपनी स्वीकृति दे दी और इसी दिन से यह अधिनियम भूमि विधि का भाग बन गया।"[1] ज़मींदारों के आधिपत्य को किसी हद तक घटाने का प्रयास ज़रूर हुआ लेकिन उल्लेखनीय सुधार नहीं हो पाया। ज़मींदारों का दबदबा बना रहा - "भूमि सुधार के प्रारंभिक कदम के रूप में प्रथम योजना के दौरान ही 1951 में जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। 1954 आते-आते बिचौलियों का अस्तित्व कम-से-कम कागज़ पत्रों में समाप्त हो गया। इसके पीछे मुख्य इरादा सरकार और किसानों के बीच लेन-देन की सीधी व्यवस्था कायम करना था। कानून में इतनी खामियाँ थीं कि भूतपूर्व ज़मींदार का अस्तित्व भी बना रहा। पहले की ही तरह वर्ग युद्ध जारी रहे। केवल नाम बदल गये। जिन्हें पहले सामंती भू-स्वामी और ज़मींदार के नाम से जाना जाता था वे अब भूतपूर्व ज़मींदार, जोतदार और धनी किसान बन गये थे।"[2] मार्कण्डेय ने अपनी रचनाओं में ज़मींदारी उन्मूलन के असलियत को उद्घाटित किया है।

ज़मींदारी उनमूलन के बाद ज़मींदारों ने अपने को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप फिर से सुदृढ़ कर लिया। 'उत्तराधिकार' कहानी का योगेश राव ऐसा

---

1. डॉ. अर्चना सिंह - भूमि सुधार का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव - पृ. 90
2. महाश्वेता देवी - भारत में बंधुआ मंजदूर - पृ. 47

ही एक जमींदार है। जमींदारी उनमूलन के बाद "जोगेश राव जी ने बाज़ारों और मनेशियों के मेलों से लाखों रुपया कमाना शुरू कर दिया था। बीज की गोदामों से लेकर घी-दूध, मुर्गी और अंडे के नये रोजगार शुरू कर दिये थे और शहरों में बंदूक तथा मोटर की एजेन्सियाँ ले ली थीं।"[1] ज़मींदारी उन्मूलन के बाद भी इन लोगों की आर्थिक स्थिति सुरक्षित थी, यही कारण है कि उसका दबाव अब भी ऐसा ही बना हुआ है। जोगेश राव अब कांग्रेस का एक बड़ा नेता और प्रतिष्ठित आदमी कहलाता है। मार्कण्डेय ने जोगेश राव के ज़रिए ज़मींदारी उन्मूलन के बाद अपने को राजनेता का रूप देनेवाले लोगों का जिक्र किया है।

मार्कण्डेय की 'कल्यानमन' कहानी जमींदारी उनमूलन की व्यर्थता को उद्‌घाटित करती है। जमींदारी उन्मूलन के बाद मंगी को कल्यानमन पोखरे पर अधिकार मिल गया। इस तालाब में सिंघाडे की खेती करके मंगी अपनी और बेटा पनारु की जीविका चलाती है। किंतु ठाकुर उस कल्यानमन को हथियाना चाहता है। ठाकुर का लड़का कल्यानमन वाले तालाब को अपनाने के लिए पनारु को मंगी के विरुद्ध खड़ा कर देता है। मंगी इन ज़मींदारों के कुकृत्य के बारे में बेटे से कहता है कि "जानता नहीं ये लोग ज़मीन के लिए, आदमी की गरदन भी काट सकते हैं। ...भला बची है एक बिस्सा भूँय किसी मजूर-धतूर के पास? सभी तो खेत जोत रहे थे। कोई मार खा कर इस्टीप लिख गया, तो किसी को बहका कर सादे कागद पर अँगूठे की टीप ले ली, इन लोगों ने। किसी को सौ दो सौ देकर डराया।"[1]

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 278
2. वही - पृ. 188

आखिरकार ज़मींदार मंगी के नाम लगे कल्यानमन को उनसे छीन लेता है। उनके दबाव के सामने ज़मीन छोड़ने के लिए मंगी मज़बूर हो जाती है। ज़मींदारी उन्मूलन के बाद भी इन लोगों ने मनमाने ढंग से काम चलाया। इनका कोई कुछ भी नहीं बिगड़ सका।

'बीच के लोग' का बुझावन ठाकुर हरदयाल के एक बीघे खेती का सालों से जोतदार था। स्वातंत्र्योत्तर बनाए गए कानून के तहत उस ज़मीन बुझावन के नाम पर हो जाता है। ठाकुर उस ज़मीन महाजन को बेचना चाहता है। ज़मीन के अधिकार को लेकर ठाकुर और बुझावन के परिवार के बीच संघर्ष खड़ा हो जाता है। मामला जब ठाकुर के संबन्धियों के पास पहूँचता है तो वे लोग बुझावन को जमीन वापस करने की सलाह देते हैं - "जिसका लो, चाहे जैसे भी हो मूल सूद के साथ उसे दो, जिसकी धरती है उसे उसको लौटाओ... बात यही ठीक है।"[1] खेत हथियाने के कुचक्र में हरदयाल ने रातों रात बुझावन के खेत के आलू खोदवा लिये। बुझावन निराशग्रस्त है। कानून से उसका भरोसा उठ गया है - "कईसा कानून-नियम दादा, देख तो रहे हो। सब जस का तस है। पइसा का जोर, बल का जोर सब नकाम किये दे रहा है।"[2]

जमींदारी उन्मूलन के कानून लागु होने के दौरान ग्रामीणों में बनी खुशी जल्दी ही निराशा में तब्दील हो गयी; क्योंकि ज़मींदारी उन्मूलन एक हद तक घोषणा ही रह गया था।

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 482
2. वही - पृ. 482

3.8.2 आर्थिक विकास योजनाओं की विफलता

गाँव के आर्थिक विकास को लक्ष्य करके 1950 में 'योजना आयोग' के अंतर्गत अनेक योजनाऐं बनाई गईं। सही कार्यन्वयन के अभाव में उसका लक्ष्य बीच में ही छुट गया। दरअसल इससे आम किसान और भूमिहीन मज़दूरों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। इस तत्य को मार्कण्डेय ने 'दौने की पत्तियाँ', 'आदर्श कुक्कुट गृह', 'भूदान' जैसी कहानियों में बखूबी से उतारा है।

मार्कण्डेय की 'भूदान' कहानी में भूदान पद्धति की निस्सारता का चित्रण किया है। भूदान आन्दोलन आचार्य विनोबा भावे द्वारा सन् 1951 में शुरू किया गया। भूमिधरों से दान में प्राप्त ज़मीन को भूमिहीनों में बितरित कर उन्हें स्वतन्त्र खेती करने में योग्य बनाना इस आन्दोलन का मूल लक्ष्य रहा है। दरअसल "भूदान आन्दोलन एकांगी न होकर बहु उद्देशीय क्रांति है। सत्ता का प्रत्येक गाँव में विकेन्द्रीकरण, भूमि एवं सम्पत्ति पर प्रत्येक का अधिकार एवं प्रत्येक कार्य का समान फल इस आन्दोलन के उद्देश्य में निहित है।"[1] भूदान आंदोलन को केवल थोडी सफलता ही मिल पाई है। भूदान आन्दोलन से लोगों ने जो सपने देखे गये वे सफल नहीं हो पाये। 'भूदान' कहानी का रामजतन भी भूदान पद्धति से मिलनेवाली

---

1. "Infact objective is three fold, firstly, power should be decentralised from village to village; secondly everybody should have a right on land and property; thirdly there should be no distinction in the matter of wages etc"
   A.R. Desai : Rural Sociology in India - P. 631

भूमि को लेकर सपना देखता है लेकिन उन्हें निराश होना पड़ा है। रामजतन सुना था कि ठाकुर ने भूदान पद्धति में दस बीघा भूमि दान किया है। खबर उड़ती है कि वह भूमि गरीबों को बाँटी जायेगी। अन्य भूमिहीनों के साथ वह भी आशा बाँधती है ठाकुर रामजतन को भूदान पद्धति से पाँच वीधा जमीन दिलाने का वादा करता है। भूदान से भूमि मिलने की आशा में वह अपनी एक बिगहा भूमि ठाकुर को वापस देता है, जिस पर स्वातंत्र्योत्तर उन्हें अधिकार मिल गया था। भूदान से उसे पाँच बिगहा भूमि मिल जाती है। मगर इस दान लीला का रहस्य तब खुलता है जब भूदान कमेटी का मंत्री रामजतन को समझाते हैं कि "ठाकुर के जिस दान से उसे भूँय मिली है वह केवल पटवारी के कागज़ पर थी। असल में तो वह कब की गोमती नदी के पेट में चली गई है।"[1] इस कहानी के संबन्ध डॉ. धनजय वर्मा की राय यह है कि "यह नए विकास के स्वप्न भंग की कथा है जिसमें ग्राम का पुराना शोषक वर्ग अपने संकुचित स्वार्थ के कारण आज भी किसानों के अभावग्रस्त जीवन और उसकी ट्रेजेडी का उत्तरदायी है।"[2] भूदान आन्दोलन का असफल होना स्वाभाविक था क्योंकि भूदान में बंजर भूमि देना, ज़मीन का वितरण कागज़ तक रहना, भ्रष्ट नेताओं द्वारा भूदान में संग्रहित ज़मीन को अपनाना आदि से भूदान पद्धति विफल रहा है।

मार्कण्डेय ने 'आदर्श कुक्कुटगृह' नामक कहानी में कुटिर उद्योग की विफलता की ओर इशारा किया है। गाँव में कुक्कुट पालन की योजना बनी है।

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 278
2. सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी - नई कहानी संदर्भ और प्रकृति - पृ. 197

कमटी के लोगों ने गाँववालों को समझाया कि इस पद्धति के द्वारा गाँव की आर्थिक दशा में क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाएँगे। अपनी सुनहरे भविष्य के लिए रामजतन के साथ गाँव के सभी अपनी मुर्गी-मुर्गे को देते हैं। आदर्श कुक्कुट गृह के उद्‌घाटन के लिए कलेक्टर, तहसीलदार, डिप्टी साहब आदि सरकारी अफसर उपस्थित होते हैं। उद्‌घाटन समारोह के बाद साहब लोग लौटते समय अपने चपरासियों से कहकर मुर्गी-मुर्गीयों को पकड़कर ले जाते हैं और आदर्श कुक्कुट गृह खाली हो जाता है - "धीरे-धीरे चपरासियों ने छोटे साहब को घेर लिया और... एक-दो... दो-तीन... मुर्गे इक्कों पर बँध गये, साइकिलों के कैरियरों में टंग गये, झेलों में कस लिये गये और मेहमानों के जाते-जाते आदर्श कुक्कुट गृह खाली हो गया।"[1] इससे रामजतन जैसे अनेकों का सपना ही नहीं टूटा बल्कि ज्यादातर ग्रामीणों की एकमात्र संपति मुर्गे-मुर्गी भी नष्ट हो जाती है।

'आदर्श कुक्कुट गृह' की तरह 'दौने की पत्तियाँ' कहानी भी सरकारी विकास योजनाओं के यथार्थ चेहरे को बेनकाब करती है। 'आदर्श कुक्कुटगृह' के रमजान और 'दौने की पत्तियाँ के भोला की हालत एक जैसी है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के तहत गाँव में नहर बनाना शुरु किया। नहर की काम तिवारी के खेत पर आकर रुक गया। वोट दे दिलाकर जिताए गए मिनिस्टर की सिफारिश और इंजीनियर को रिश्वत देकर अपने खेत से नहर मुडवा दिया गया जिससे पासवाली भोला कोइरी का एकमात्र खेत नहर में समा जाता है जिसे पाँच वर्ष तक आधे पेट

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 267

रहकर उसने खरीदा था। विवेकी राय के मुताबिक - "भोला कोइरी जैसे कोटि-कोटि दीन-हीन जन स्वातंत्र्योत्तर विकास के रथ चक्रों में पिस गए हैं। उनके पास उत्कोच के लिए धन दौलत तो क्या अपने लिए दौने की पतियों भी नहीं रह गई।"[1]

स्वातंत्र्योत्तर बनाए गये ज्यादात्तर विकास योजनाऐं सही कार्यान्वयन के अभाव में लक्ष्य से छूट गयी हैं।

3.9 आर्थिक शोषण और वर्ग संघर्ष एवं विद्रोह

आर्थिक विषमता ऊँचे-नीचे वर्गों को जन्म देती है। उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करते हैं तथा उसे दबोचकर रखना चाहता है। शोषित वर्ग उसके दबाव से मुक्त होकर सांस लेना चाहता है। वह अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाता है। संघर्ष करने के लिए संगठित होना है। "वर्ग संगठन में उन वर्गों को एक जगह लाने की बात है जो उपेक्षित है और जिनका समाज में तथा पूरी व्यवस्था में कोई मूल्य नहीं बना है। उपेक्षित अवस्था में जीने-वाले समाज के यह दुर्बल घटक संगठित होने पर वर्ग हितों के लिए सीधे संघर्ष के प्रसंग बनेंगे, इन प्रसंगों से अत्याचार करते रहने का तथा उसे सहते जाने का जो कुसंस्कार समाज में बना है उस पर नियंत्रण आएगा और दुर्बल घटकों में आत्मसम्मान की चेतना आएगी।"[1] वर्ग संगठन एक ऐसी शक्ति है जो उच्च वर्ग द्वारा आयोजित असमानता

---

1. डॉ. विवेकीराय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामजीवन - पृ. 194
2. बाबुराव चंदावार - स्वाधीनता का नव संघर्ष - पृ. 24

को चुनौती देगी। नामवर सिंह के मुताबिक "शोषित व्यक्ति का अलगाव टूटने से उसके अन्दर एक नई शक्ति पैदा होती है। जो उसी की नहीं उसके वर्ग की होती है। अब यह सम्भावना पैदा होती है कि शोषित मज़दूर एक होकर शोषण की व्यवस्था ही बदल दे। ...मज़दूर की एकता वह शक्ति है जो शोषण को सदा के लिए खत्म कर सकती है।"[1]

संपन्न वर्ग यानी पूँजीपति वर्ग राज्य व्यवस्था पर हावी हो गया है। राज्य की सरकार भी पूँजीपतियों के ही हितों को वरीयता देती हैं तथा दूसरे वर्ग की उपेक्षा करती है। इसलिए निम्नवर्ग की उद्‌घार के लिए उन्हें खुद आगे आना चाहिए। मार्कण्डेय ने 'अग्निबीज' में पूँजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन के लिए सर्वहारा वर्ग को संगठित करने के लिए आह्‌वान देता है - "ग्राम समाज की स्वायत्तता और स्वावलंबन को वापस करने के लिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का परित्याग आवश्यक है, जो वर्तमान शासकों की शक्ति और सामर्थ्य से बाहर जा चुका है। अब यह कार्य सर्वहारा के व्यापक और क्रांतिकारी संगठन द्वारा ही संभव है।"[2]

उपर्युक्त चर्चित 'बीच के लोग' नामक कहानी गाँव में उभर आये वर्ग के संघर्ष को उद्‌घाटित करती है। कहानी का बुझावन आठ बरस से हरदयाल का खेत का जोतदार है। हरदयाल उस भूमि को कब्जा करना चाहता है। बुझावन जानता

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा - मानव सभ्यता का विकास - पृ. 43
2. मार्कण्डेय - अग्निबीज - पृ. 139

है कि सिकमी कानून के तहत तीन साल जोतने पर वह भूमि जोतदार का बन जाता है। हरदलाय के सामने वह अपनी खेती का हक स्थापित करना चाहता है। बुझावन को खेत से बेदखल करने के लिए रातों रात उसके खेत से आलू खोद लेता है। इस अन्याय को देखकर बुझावन पुलिस को बुलाना चाहता है। पर उसका बेटा मनरा असहमति जाहिर करते हुए कहता है - "पुलिस तुमें न्याय देगी कि तुम्हारा गला काटेगी अब भी खयाल नहीं आया तो वह भी करके देख लो। उल्टे तुम्हीं को कानून खा जाएगा। वह अमीरों की रक्षा के लिए है, हमारे जैसे निहंगों के लिए नहीं।"[1] मनरा अपनी भूमि पर हक बनाना चाहता है। वह गाँव के शोषित नौजवानों के साथ संघर्ष के लिए तैयार होते हैं - "मनरा ने नये जवानों की एक टोली खड़ी कर ली है, जिसमें हर जाती के लड़के हैं और वह भी ऐसे लडके जो मानते हैं कि कानून व्यवस्था बडों का हथियार है। यह जनता की रक्षा के लिए नहीं।"[2] युवकों के संघर्ष के रोकने के लिए गाँव के फउदी दादा हरदयाल की सिफारिश लेकर मनरा के पास आता हैं। मनरा आक्रोश करता है कि "अच्छा हो कि दुनिया को जस की तस बनाये रहने वाले लोग अगर हमारा साथ नहीं दे सकते तो बीच से हट जाऐं। नहीं तो सबसे पहले उन्हीं को हटाना होगा, क्योंकि जिस बदलाव के लिए हम रण रोपे हुए हैं, वे उसी को रोके रहना चाहते हैं।"[3] मनरा के इस कथन में गाँव में उठनेवाली नई चेतना का एहसास है।

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 486
2. वही - पृ. 488
3. वही - पृ. 495

'कल्यानमन' कहानी की बुढ़ी विधवा मंगी ज़मींदारों के शोषण, कुचक्र एवं सामाजिक अव्यवस्था से उत्पीडित है। मंगी चिंतित है कि ज़मींदारी उन्मूलन के बाद भी गरीब इनके चंगुल से मुक्त नहीं हुआ है। इस व्यवस्था के प्रति वह अपना विद्रोह जाहिर करती है - "अखिया तो फूट गयी हैं, सुरजियन की कि यह अन्हेर भी नहीं देखते, खेती चमारु करेंगा। परताल ठाकुर के नाम से होगी। बीच में पटवारी इधर से भी खाएगा, उधर से भी खाएगा। अब तो बेभूँय का किसान खाद हो गया है खाद। बस वह खेत बनाता है।"[1] मंगी अपने कल्यानमन वाले भूमि पर हक बनाये रखने के लिए लगातार संघर्ष करती रहती है। मधुरेश के मुताबिक "कल्यानमन गरीबों की आशा आकांक्षा और वर्ग मुक्त समाज की कल्पनाओं का प्रतीक बन जाता है।"[2]

मार्कण्डेय के कथा साहित्य में वर्ग संघर्ष का यथार्थ चित्रण हुआ है। वर्गगत समाज की विषमताओं एवं शोषितों के आर्थिक मसलों को आधार बनाकर लिखने के कारण मार्कण्डेय अपने हमसफरों से अलग नज़र आते हैं। दलितों पीड़ितों की तरफदारी और अपने सचेत दृष्टि के चलते ही मार्कण्डेय एक जनपक्षधर कहानीकार का दर्जा हासिल करते हैं।

---

1. मार्कण्डेय - मार्कण्डेय की कहानियाँ - पृ. 188
2. मधुरेश - नई कहानी पुनर्विचार - पृ. 162

निष्कर्ष

मार्कण्डेय का कथा साहित्य स्वातंत्र्योत्तर बदलते राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य का प्रामाणिक दस्तावेज है। स्वातंत्र्योत्तर ग्रामांचल राजनीति का अड्डा बन गया तथा पुराने ज़मींदार राजनीति के केन्द्र में आ गये। नतीजतन राजनीति तमाम विकृतियों से घेर लिया गया। अवाम के सुनहरे सपने टूट गये। राजनीतिक गठजोठ और दलबंदी ने गाँववालों की एकता को तोड़कर रख दिया है। मार्कण्डेय ने राजनीतिक क्षेत्र में पनपती अवसरवादिता, रिश्वतखोरी, घोषणबाजी, गुटबंदी का पर्दाफाश किया है। राजनीतिक नेताओं तथा सरकारी कर्मचारियों के दखल से स्वातंत्र्योत्तर बनाये गये ज्यादातर ग्रामीण आर्थिक विकास योजनाऐं विफल ही रह गयी हैं। नतीजतन गाँव में गरीबी, अभाव और भूखमरी बढ़ती गई। मार्कण्डेय को राजनीतिक और आर्थिक अंतर्विरोधों से उत्पन्न सभी समस्याओं को उकेरने में खास उपलब्धि मिली है, इसीलिए वे सचमुच काबिलेतारीफ के हकदार है।

❖❖❖

---

1. संपा. प्रकाश त्रिपाठी - मार्कण्डेय : परम्परा और विकास - पृ. 141